समर्पण ।

मेरे परम आत्मीय बाल्य-सहचर, एवं कैशोरसखा अभिन्न-हृदय गोलोकवासी पं० गुलरूप्रसाद पाण्डेयके कर-कमलोंमें यह पुस्तक सादर समर्पित है ।

लोचन प्रसाद ।

भूमिका।

महाकवि कालिदास कृत संस्कृत रघुवंश महाकाव्यका यह सरल हिन्दीमें भावानुवाद है। कहीं २ पर हमने विस्तारके भयसे भावार्थका सारमात्र अपनी भाषामें लिख दियाहै।

रघुवंश न केवल काव्य ही की दृष्टिसे आदरणीय है किन्तु हम उसे रघुवंशीय राजाओंका जीवनचरित और तत्कालीन भारतवर्षका एक इतिहास समझ कर भी सर्वथैव पठनीय समझते हैं। रघुवंशके पढनेसे पाठक प्रजा और राजाका सम्बन्ध और आदर्श नृपतिगणोंके राज्यप्रबन्धका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

आशा है यह अनुवाद हिन्दीप्रेमियोंको विशेषतः विद्यार्थीसमाजको रुचिकर होगा इत्यलम्।

१० जुलाई १९०९
बालपुर

लोचनप्रसाद।

अथ रघुवंशसार।

पहला सर्ग १.

सरयू नदीके तीरपर अयोध्या नामकी एक अतीव सुन्दर नगरी है। पूर्वकालमें यह नगरी भारतवर्षके अन्यान्य नगरोंकी अपेक्षा प्रत्येक बातमें बढ़ी चढ़ी थी। इस नगरीको सूर्यवंशी राजाओंने अपनी राजधानी नियत कर सहस्रों वर्षोंतक बड़े न्यायनीतिसे आर्यावर्तका शासन किया था और इसका गौरव बढ़ाया था। परन्तु समयके फेरसे वह पूर्व गौरव निर्लोप सा हो गया। दृढ़ और विशाल भूधरकी भांति जीर्णप्रासाद और मन्दिर घाम और वर्षाकी मार सहते उस पूर्व गौरवके स्मृति खम्भ स्वरूप खड़े २ संसारकी असारता दिखला रहेहैं। नगरीके प्राचीन विभव एवं सौन्दर्य अब केवल संस्कृत ग्रन्थोंके पत्रोंमें छिपेहुए पाठकोंको चकित एवं दुःखित करते हैं।

इसी नगरीमें पवित्र सूर्यवंशोद्भव राजा दिलीप राज्य करते थे। दिलीपके पिताका नाम मनु था। मनु सूर्यके पुत्र अथच इस वंशके आदि पुरुष थे। दिलीप अलौकिक गुणोंसे भूषित और असाधारण पराक्रमशाली थे। उनकी चौड़ी छाती, आजानु लम्बित बाहु और सुदृढ़ शरीरको देखनेसे यही ज्ञात होता था कि मानो क्षत्रिय धर्मही प्रत्यक्ष मूर्ति धारण कर

भूमण्डलको शोभित करता था । माहाराजा दिलीप महा बुद्धिमान और विद्वान् होकर बड़ेही निरभिमानी थे । उत्साह तो उनके नस २ में भरा हुआ था । वे बड़े उदार, राज कार्य-कुशल और विलक्षण परिश्रमी थे । इन सब गुणोंके कारण उनका राजकार्य बड़ी उत्तम रीतिसे चल रहा था ।

उनके राज्यमें प्रजा महा आनन्दके साथ थी । प्रजाओं-को कभी दुःख या कष्ट न होने पाता था । लगान प्रजाके हितसाधनके लिए लिया जाता था न कि राज कोष भरने तथा अपने सुखकी सामग्री साधनके लिये, उनके राज्यमें कोई प्रजाको सता नहीं सकता था । वे शत्रुओंको जीतकर उन्हें अपने वशमें कर लेते थे । पिताके समान वे अपनी प्रजाका पालन करते और उन्हें शिक्षा देते थे । उनके सुशासनके प्रभावसे कोई कुमार्गमें चलना तो दूर रहा चल-नेका साहस तक नहीं कर सकता था । सब लोग सनातन रीति नीतिके अनुसार चलते थे । चोर या लुटेरोंका कहीं भय न था और न वे कभी उपद्रव मचा सकते थे । दण्ड विधान केवल लोगोंकी चालचलन सुधारनेके लिये ही रखा गया था । राजा अथवा उनके कर्मचारियोंके द्वारा भी प्रजाको कभी कष्ट नहीं मिलता था क्योंकि राजा दिलीप संसारी सुख भोग भोगते हुए भी उनमें लिप्त अथवा व्यसनी न थे । आत्म-श्लाघा उन्हें छू तक न गई थी । वे गम्भीर-स्वभावके बड़े ही

योग्य शासक थे। प्रजाके सुख और समृद्धिसे वे राज्यकी उन्नति समझते थे। महाराज दिलीप अपने सुप्रबन्ध एवं अतुल बाहुबलसे दिग्विजय करके समस्त भूमण्डलको सहज ही शासित करते थे। यह सुविशाल भूमण्डल उनके लिए मानो एक छोटी सी नगरीके समान था।

मगध देशके राजाकी बेटी सुदक्षिणा राजा दिलीपकी पटरानी थी। दिलीप अपनी पटरानी पर विशेष अनुराग रखते थे। यद्यपि राजा रानी बड़े सुखसे काल व्यतीत करते थे और उन्हें किसी बातकी कमी न थी तथापि उनकी कोई सन्तान न होनेके कारण वे बहुत उदास और दुःखित रहा करते थे। एक दिन उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। वे इस दुःखको स्वकुल गुरुपर प्रकट करनेकी इच्छासे अपनी पटरानीको सङ्गमें ले वशिष्ठ ऋषिके यहां जानेके लिए तैयार हुए। सुयोग्य मन्त्रीके हाथमें राज्यका सब भार सौंपकर दिलीप सुदक्षिणा-सहित मनोहर रथ पर सवार हो वशिष्ठ ऋषिके आश्रमकी ओर रवाना हुए। इस यात्रामें राजाने अपने संग सेना या सेवकोंका समूह न लेकर केवल थोड़ेसे आदमी लिये

क्रम २ नाना ग्राम पार करके राजा अरण्य मार्गमें पहुंचे। अरण्यकी शोभा बड़ी मनोहारिणी थी। कहीं नाना-भांतिके सुन्दर २ फूल खिले हुए थे जिनकी सुगन्धिसे वन-प्रदेश सौरभित हो रहा था। मन्द २ पवन फूलोंको चुम्बन

करती और लता कुञ्जोंको हिलाती वह रही थी। कहीं रथकी आवाजको मेघका गर्जन समझकर मयूर मयूरीगण ऊपरकी ओर दृष्टि उठाके कारव कर रही थी। कहीं रथमार्गके निकट कुछ दूरपर हरिण हरिणी रथकी अपूर्व ध्वनि सुनकर एकटक लगाए रथकी ओर देख रही थीं। कहीं उन्मत्त सारसगण श्रेणीबद्ध हो आकाशमार्गमें उड़ रहे थे। निर्मल जलपूरित सरोवरमें कहीं कमल खिलेहुए मन्दगतिसे लहरा रहे थे। वक हंस, चक्रवाक आदि जलचर पक्षी आनन्दसे कलरव करते क्रीडा कर रहे थे। मधुगन्धसे अन्ध होकर भौंरे मधुर २ गुञ्जार करते एक फूलसे दूसरे फूलपर भ्रमण कर रहे थे। किसी २ वनप्रान्तमें ग्वालवृन्द उपहारके निमित्त हाथोंमें ताजा घी लेकर राजा दिलीपकी अगवानीके लिए मार्गपर खडे हुए थे।

इस भांति वनकी शोभा देखते २ हमारे चरितनायक सन्ध्याके समय वशिष्ठऋषिके आश्रम पर पहुंचे। वहां पहुंचकर क्या देखते हैं कि तपसी लोग वनसे समिध और कुशादि होम-द्रव्य लेकर आश्रमको लौट रहे हैं। मृग समूह आश्रम-कुटीरके आंगनपर बैठेहुए आनन्दसे पगुरा रहे हैं। ऋषिकन्यागण वृक्षोंमें पानी दे रही हैं। दिएहुए पानीको पीनेके लिए वृक्षोंसे पक्षी उतरकर अपनी प्यास बुझा रहे हैं, और यज्ञीय-हविकी सुगन्धिसे चतुर्दिग आमोदित हो रहा है।

आश्रमके ऋषिगण राजाका आगमन देख बहुत खुश हुए। राजा सुदक्षिणासहित रथसे उतरकर महर्षि वशिष्ठके पास गए और बड़े विनय भावसे उनको प्रणाम किया। वशिष्ठ राजा रानीको अशीर्वाद देकर कुशल मंगलका समाचार पूछने लगे।

दिलीप अपनी कुशलवार्ता ऋषिसे कहनेके पश्चात् बोले महाराज। आपकी दया और आशीर्वादसे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। प्रजा भी बड़े आनन्दसे है। राज्यमें सदैव सुखशान्ति छाई हुई है। न कहीं रोग है न अकाल। परन्तु तोभी मेरा मन कभी आनन्दित नहीं होता। यह सारी सम्पत्ति, अखण्डल राज्य, प्रबल सैन्य सामन्त सब मेरे लिए व्यर्थ हैं। हा! पुत्रके विना जीवन निःसार है। पुत्रहीनको संसार अन्धकार रूप है। मुझे यह दुःख असह्य हो उठा है और इसीसे मैंने आपके चरणोंकी शरण ली है। आपके होते मुझे ऐसा दुःख! हा! दैव! दिलीप राजा किस पापके कारण पुत्रमुखदर्शनसे वञ्चित किया गया?॥

महर्षि वशिष्ठ राजाकी दुःखपूर्णवाणी श्रवणकर योगबलसे सब बातें जान गए और बोले, "महाराज, सुनो। एक समय तुम इन्द्रकी उपासना करके स्वर्गलोकसे भूलोकको आ रहे थे। रास्तेमें सर्वजन पूजनीया सुरभि कल्पवृक्षकी छायामें शयन कर रही थी। तुम उस समय व्यग्रचित्त थे। मद-

क्षिणा द्वारा उनका सत्कार न कर तुम घर आ गये । इस अपराधके लिये सुरभिने तुम्हें शाप दिया कि तुमने मेरी अवज्ञा की, इससे मेरी सन्ततिकी आराधनाके बिना तुम्हारी कोई सन्तान न होगी । जिस समय सुरभिने तुम्हें शाप दिया उस समय दिग्गजगण मन्दाकिनीमें जलकेलि करते चिग्घार रहे थे । इसीसे तुम अथवा तुम्हारे सारथी उस शापको न सुन सके । आजकल वरुण एक यज्ञ कर रहे हैं । सुरभि आमन्त्रित होकर पातालको गई हैं । उनकी कन्या नन्दिनी हमारे आश्रमहीमें हैं । तुम रानीके सहित उनकी पूजा करो जब वे खुश होंगी तब निश्चय और अति शीघ्र मनोरथ सिद्ध होगा ।

ठीक इसी समय नन्दिनी वनसे आश्रममें आई । वसिष्ठ इसे एक शकुन समझकर राजासे बोले कि तुम्हारी मनोकामना शीघ्र पूर्ण होगी । आज़से तुम 'गोचार व्रत' का पालन करो । केवल वन-फल मूल भोजन करके नन्दिनीकी सेवा किया करो । नन्दिनी जब चले तब तुम भी चलना, बैठे तब बैठना और उसके खड़े होनेपर खड़े होना । इस प्रकार छायातुल्य अनुगामी होकर कुछ दिन उनकी सेवा करो । सांझ सवेरे सुदक्षिणा भी उनकी यथोचित पूजा किया करे । इस भांति कुछ दिन सेवा करनेपर वह प्रसन्न होगी और तुम आत्म-सदृश पुत्र लाभ करोगे । " राजा दिलीपने

कुलगुरुके उपदेशको शिरोधार्य किया। इसके पीछे ऋषिने जब देखा कि अब शयन करनेका समय आगया तब उन्होंने राजाको शयनके निमित्त जानेकी आज्ञा दी। गुरुकी आज्ञानुसार राजाने अपनी पटरानीके सहित व्रतपालनके लिये पर्णकुटीरमें कुशासनपर शयन किया।

दूसरा सर्ग २.

भोर होते ही नरपति शय्या त्याग कर प्रातःकृत्यादि करनेको उद्यत हुए। प्रातःकर्म समाप्त कर राजा सुदक्षिणासहित सुरभि कन्या नन्दिनीकी सेवामें उपस्थित हुए। रानीने पुष्पमाला आदिके द्वारा नन्दिनीकी विधिवत् पूजा की। बछड़ेके दूध पी लेनेके पीछे राजाने बछड़ेको रस्सीसे बांधकर नन्दिनीको छोडदिया। नन्दिनी आगे आगे चलने लगी। राजा रानी उसके पीछे हो लिये। जब नन्दिनी तपोवनके सीमा प्रान्त पर पहुँची तब राजाने रानीको आश्रममें लौट जानेकी अनुमति दी और अकेले आप गौके पीछे पीछे अरण्यमार्गमें चलने लगे। राजा दिलीप कभी कोमल कोमल सुस्वादु नवीन तृण देकर, कभी नन्दिनीकी देहको खुजलाकर और कभी मशक आदि काटने वाली मक्खियोंको उड़ा उड़ा कर नन्दिनीकी सेवा करने लगे। नन्दिनी चलती तो राजा भी चलते, खड़ी होती तो खड़े होते, पानी पीती तो पानी पीते और बैठती तो बैठते। इस प्रकार छायातुल्य उसके पीछे चले।

राजा यद्यपि विना अनुचरके अकेले वन वनमें फिर रहे हैं, मणि मुकुटादि कोई राजचिह्न पासमें नहीं है, बिखरे हुए बाल लता पाशसे बंधेहुए हैं और हाथमें धनुषबाण भी नहीं है, तथापि अतुलनीय प्रभापुञ्जके प्रभावसे राजश्री स्पष्ट लक्षित हो रही है। उनकी रूपसुषमाको देखकर वनदेवी उनके स्वागतका साज साजने लगी। वनके विहङ्गगण कलरव करके वन्दीवृन्दकी भांति राजाका स्तुतिपाठ करने लगे। नवीन लता वायुवेगसे सिर झुका झुका उनके चरणोंपर पुष्पवृष्टि करने लगी और मन्द मन्द सुगंध समीर उनपर चँवर फेरने लगी। पीठपर बृहत्कोदण्ड देखकर भी मृगगण प्रजाकी भांति निःशङ्क हृदय उनके दर्शन द्वारा नयन शीतल करने लगे।

इस प्रकार नन्दिनीके पीछे भ्रमण करते करते सन्ध्या हुई। भगवान् सूर्य अपने करसहस्रोंको समेट अस्ताचल-गामी हुए। आकाशमण्डल रक्तवर्ण हो उठा। वराहगण पोखरके कीचडसे उठकर इधर उधर फिरने लगे। मृगसमूह तृणाच्छन्न भूमिपर शयन करने लगे। पक्षी-गण कोलाहल करते हुए अपने बसेरोंको लौटने लगे और वनभूमि क्रम क्रम अन्धकारसे आवृत होने लगी।

सन्ध्याका आगमन देख नंदिनी आश्रमको लौटने लगी राजा भी उसके साथ लौटे। सुदक्षिणा गौकी अगुवानीके

लिये आश्रमसे कुछ दूर गई थीं। जब नन्दिनी उनके निकट आई तो रानीने उसकी परिक्रमा और पूजा की। फिर सब आश्रमपर पहुँचे। फिर् बछड़ेके दूध पीनेके बाद नन्दिनीको दुहकर राजाने उसके सामने एक दीपक जलाया और यथा-विधि पूजा की। दूसरे दिन राजाने पूर्वोक्त विधिसे नन्दिनीका हवन पूजन किया। इस भांति इक्कीस दिन व्यतीत हो गये।

बाइसवें दिन नन्दिनीने राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये माया रची। वह हिमालयकी ओर चरनेके लिए गई और जिस स्थानसे गङ्गानदी निकलती है उस जगहकी हरी हरी घासको चरते चरते पासके एक गुफा द्वार पर पहुँची। राजा इस समय हिमालयकी शोभा देखनेमें मग्न थे। एकाएक नन्दिनीका आर्तनाद सुनकर राजाने उस ओर दृष्टि उठाई तो क्या देखते हैं कि एक भयंकर सिंह नन्दिनी पर आक्रमण कर रहा है। नन्दिनीको सिंहके मुखसे बचानेके लिये राजा बाण निकालनेकी शीघ्रतासे तरकसपर हाथ ले गये। परन्तु आश्चर्यके साथ वे क्या देखते हैं कि न तो तरकससे बाण निकलते, न उनका हाथ ही ऊपरको उठता है। हाथको ऊपर उठानेकी कोशिश राजाने भरसक की परन्तु उनका हाथ वहांसे तिल मात्र न टसका। यह देख राजा बहुत ही क्रोधित हुए। उधर गायपर सिंह हमला करना चाहता है इधर ये निश्चल होकर खड़े हैं। इनसे कुछ करते धरते नहीं बनता

मन्त्र द्वारा हतवीर्य सांपकी भांति राजा दिलीप मनहीमन जलने लगे।

इतनेमें सिंहने कहा, महाराज! आप क्यों विनाहक तकलीफ उठा रहे हैं? बाण मारनेपरभी वह मेरा क्या कर सकेगा। वायु केवल वृक्षोंको ही उखाड़ सकता है। पहाड़के आगे उसका वश ही नहीं चलता। मैं निकुम्भका मित्र हूँ। मेरा नाम कुम्भोदर है हम लोग भूतनाथ महादेवके दास हैं। वे हम लोगोंकी पीठपर बैठके बैल पर सवार होते हैं। यह जो देवदारुका वृक्ष देखते हो उसीकी रक्षाके लिए शिवजीने हमे यहां रखा है। इस वृक्षकी छाल एक जंगली हाथीके शरीर खुजलानेसे निकल गई उससे महादेव पार्वतीको बड़ा ही दुःख हुआ क्योंकि उसे उन्होंने जल सींच २ कर बढ़ाया था और पुत्रकी नाईं प्यार करते थे। उसी दिनसे शिवजीने इस वृक्षकी रखवालीके लिए मुझे नियत किया है और आज्ञा दी है कि जो कोई जन्तु इस पेड़के निकट आवे उसीको तुम भक्षण करके अपनी क्षुधा निवारण किया करो। सबदिन भोजन नहीं मिलता है। आज भाग्यवशतः यह गाय स्वयं आ गई है। मैं महीनोंका भूखा आज इसको भोजन कर अपनी क्षुधाग्नि शान्त करूंगा। आप मेरे भोजनमें हाथ न लगावें। लज्जा छोड़के आश्रममें लौट जावें। आप यथोचित गुरुभक्ति दिखला चुके। उसमें कोई त्रुटि न रही।

रक्षकके शक्तिभर उपाय करने पर भी यदि रक्षणीय वस्तु रक्षित न रह सकती तो उससे रक्षक की यश हानि नहीं होती सिंह इस प्रकार अपना परिचय दे चुप हो गया।

दिलीप बोलने लगेः--हे मृगेन्द्र! तुम शिवजीके किंकर हो। इससे तुमसे विनय करनेमें भी हमें लज्जा नहीं है। तुम जानते ही हो कि नन्दिनी कोई साधारण गाय नहीं है। वह महर्षि वशिष्ठ की धेनु है। मैं उसकी रक्षाके लिये नियुक्त हूं। मेरे सम्मुख गुरु-धन नष्ट होगा तो उसे मैं कैसे सह सकूंगा। हाय! इसका छोटा बछड़ा क्या करता होगा? ज्यों २ दिन चढ़ता जाता है त्यों त्यों उसका गला सूखता जाता होगा और वह अपनी माको देखनेके लिए व्याकुल होता होगा। इस लिऐं कृपापूर्वक तुम इस गायके बदलेमें मुझे भक्षण कर अपनी क्षुधा शान्त करो।"

यह सुन सिंहने हंसकर कहा हे राजा! आप बच्चोंकी भांति बात करते हैं। आपकी बात सुन हमें आश्चर्य होता है। आप इस भूमण्डलके चक्रवर्ती होकर इस सामान्य गायके लिये अपना अमूल्य जीवन त्यागनेको प्रस्तुत हो रहे हैं। एकाधिपत्य, यह मनोहर रूप, यह नवीन यौवन क्या इस तुच्छ बातके लिये तजना योग्य है। क्या ऐसे दुर्लभ वस्तुओंका नाश स्वीकार करना निर्बोध मनुष्यका काम नहीं है? गायके बदले आप देह देंगे तो एकहीका उपकार हो सकता

है । परन्तु आप जीवित रहेंगे तो प्रजाओंका अतुल उपकार होता रहेगा और महर्षिको एक धेनुके बदले हजारों दुधा-रुगायें देकर उन्हें सन्तुष्ट कर सकते हैं । इस लिये ऐसा दुःसाहस छोड़दीजिये यह कह सिंह चुप हो रहा ।

इधर राजा और सिंहके बीच ऐसी बातचीत हो रही है। उधर नन्दिनी कातर होकर राजाकी ओर देख रही है मानों सहायताके लिये उनसे प्रार्थना कर रही हो । नन्दि-नीको देख राजा और भी दुःखित हुए और बोले कि प्राणि-योंको विपतसे उद्धार करना क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है । क्षत्रि-यका जन्मही इसी कारण होता है । जब हम इसे विपदसे उद्धार न कर सकें तो हमारा जन्म ही व्यर्थ हुआ । सारे संसारमें हमारी निंदा और घृणा होगी । फिर घृणित और कलंकित मनुष्यका जीवन न जीनेके बराबर है । इससे हे मृगेन्द्र ! नन्दिनीके बदले यह शरीर हम तुम्हें अर्पण करते हैं । तुम हमें भक्षण करोगे तो तुम्हारा पारना भी पूरा हो जायगा और गुरु धन भी नष्ट न होगा । सब बातें बन जावेंगी । देखो मृगेन्द्र तुम भी तो पराधीन हो । इस रक्षणीय देव-दारुके लिये कितना प्रयत्न करते हो । नन्दिनीकी रक्षाके लिये हम उसी भांति प्रयत्नवान हैं । रक्षणीय वस्तुको खोकर अक्षत शरीरसे हम महर्षिके सन्मुख कैसे उपस्थित होंगे । महर्षि भी मनमें क्या सोचेंगे ? नन्दिनी सामान्य गाय नहीं

है। यह सुरधेनु सुरभिके समान है। केवल शिवजीकी कृपासे तुमने इसपर आक्रमण कर सका है। इस धेनुके बदले लक्ष लक्ष दुधारू गाय देनेसे भी महर्षिका कोप शान्त न होगा। हे मृगेन्द्र! सज्जनोंकी क्षणकाल वार्तालाप करनेसे ही मित्रता हो जाती है। अतएव तुम्हें इस बन्धुकी प्रार्थनापर सहमत होना पड़ेगा।

सिंह राजाकी यह बात सुनकर खुश हुआ और उनकी प्रार्थना मान ली। इतनेमें राजाका हाथ जो जकड़सा गया था खुल गया। उन्होंने अस्त्र शस्त्र छोड़कर सिंहके आगे नीचे मुंह करके मांसपिंडकी भांति अपनी देह उसे सौंप दी। किन्तु सिंहका प्रचण्ड—आघात सोचकर तिरछी दृष्टिसे कभी कभी ऊपरकी ओर देखने लगे। इस समय स्वर्गसे विद्याधरगण राजाके मस्तकपर पुष्पवृष्टि करने लगे। सुरभितनया नन्दिनी राजाको सम्बोधन करके बोली "वत्स! उठो।

राजा उठकर क्या देखते हैं कि वहां सिंह नहीं है। केवल नन्दिनी खडी हुईहै। भय और विस्मयसे घिरेहुए राजा चित्रकी भांति खड़े रहे। उनकी यह दशा देख नन्दिनी बोलीः—वत्स! भयको त्यागो, मैंने तुम्हारी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये माया विस्तार की थी। सिंह जो मुझपर आक्रमण करना चाहता था वह बनावटी सिंह था। महर्षिकी कृपासे हमें सिंह क्या यम भी कुछ नहीं कर सकते। तुम्हारी गुरुभक्ति और गोभक्तिकी

हद होली । तुम मुझसे वरदान मांगो । मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूं । राजा आनन्दके सागरमें डूब गये । अपना मनोरथ सिद्ध होते देख फूले न समाते थे । बड़े नम्रभावसे हाथ जोड़कर उन्होंने नन्दिनीसे यह वर मांगा कि वंशको बढ़ानेवाली तथा अपनी सुकीर्तिसे संसारको मुग्ध करनेवाली हमारी सन्तान हो । नन्दिनी 'तथास्तु' कहके बोली कि राजा पत्तेके दोनेमें मेरा दुग्ध दुहकर तुम पान करो । परन्तु राजाने सविनय यह कहकर अस्वीकार किया कि ऋषिकी आज्ञासे बछड़ेके पीनेसे बचे हुए दुग्धको मैं पान करूंगा । धन्य राजा दिलीप ! धन्य गोपालक, गुरुभक्त वीर क्षत्रिय !!

फिर नन्दिनी वनसे आश्रमको लौटने लगीं । राजा भी पीछे पीछे मन ही मन आनन्दित होते लौटने लगे । थोड़ी देरमें आश्रमपर पहुंचे । राजाने परमाह्लादित हो ऋषिसे सब कथा कह सुनाई । फिर राजाने सब वृत्तान्त अपनी प्रियतमा सुदक्षिणासे कहा । रानीके सुखकी सीमा न रही । उनके हृदयमें आनन्दकी सरिता उमड़ चली । इसके पीछे राजाने सन्ध्यावन्दनादि समाप्त करके नन्दिनीकी यथाविधि पूजा की और वशिष्ठकी आज्ञाके अनुसार दुग्धपान किया । दूसरे दिन वशिष्ठने राजाको 'गोचर-व्रत' का पारना कराया और आशीर्वाद देकर विदा की । राजा और रानीने कुलगुरु वशिष्ठको साष्टांग प्रणाम और नन्दिनीकी प्रदक्षिणा करके अपनी राजधानीको प्रस्थान किया ।

इधर प्रजागण भी राजा रानीके दर्शनके लिये उत्सुक थे राजाका आगमन श्रवणकर वे बहुत ही खुश हुए। बड़े समारोहके साथ उनका आगत स्वागत हुआ। सारी अयोध्यापुरी मारे आनन्द ध्वनिके गूंज उठी। राजा राज्यभार स्वकरमें ग्रहण करके परम सुखसे राजकाज करने लगे।

कुछ काल बीतनेपर ईश्वरकी कृपासे दिलीपकी रानी सुदक्षिणाका गर्भ संचार हुआ। क्रम क्रम गर्भके सब चिह्न दिखाई देने लगे। प्रभात शशीकी भांति उनका मुखचन्द्र पीला होने लगा। शरीर दिन दिन भारी होने लगा। आलस्य नस नसमें छागया। दुर्बलता यहांतक बढगई कि गहने भी बोझसे जान पड़ने लगे। खाने पीने, सोने बैठने उठनेमें उदासी दिखाई देने लगी। किसी भी बातमें मन नहीं लगता था। केवल जमीनपर सोने और मिट्टी खानेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। प्रेयसीके गर्भ लक्षण देखकर राजा मन ही मन बहुत आनन्दित होते थे।

इस भांति दो महीने कष्टके साथ बीते। फिर धीरे धीरे रानीकी अरुचि उदासी, आलस्यता आदि सब दूर हुई। और उनके शरीरकी शोभा बढ़ने लगी। नौ महीने बीत गये। दशवां मास पूरा होते ही शुभलक्षण और शुभलग्नमें रानीने एक पुत्र रत्न प्रसव किया। राजा, प्रजाके सुखकी सीमा न रही। पुत्रोत्पत्तिके उत्सवमें बहुत रत्न, गो, धन, धान्य आदि दान

राजा विप्रों और गरीबोंको देने लगे । नृत्य, गीत, द्वार द्वार होने लगे । राजद्वारमें नौवत झड़ने लगी ।

फिर यथासमय राजाने प्रसूतिगृहमें जाकर अपने पुत्रके मुखकमलका दर्शन किया । पुत्रकी शोभा देखकर राजाको अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ । इसके पीछे कुल-गुरु वशिष्ठ वहां उपस्थित हुए और जातकर्मादि समाप्त किया ।

महाराज दिलीपके पुत्रोत्पत्ति--समाचारसे देवगण भी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और आकाशमें दुन्दुभि बजाकर राजाको बधाई देने लगे । ऐसे शुभ अवसरपर बन्दी (कैदी) छोड़े जाते हैं। परन्तु दिलीपके सुशासनके प्रभावसे उस कारागारमें एक भी बन्दी न था । वे फिर किसे छोड़ते । स्वयं राजा ही पितृ--ऋण रूपी बन्धनसे मुक्त होकर कृतकृत्य हुए ।

नव-जात कुमारका नाम रघु रखा गया । रघु दिन दिन द्वितीयाके चन्द्रमाके तुल्य बढ़ने लगे । उनकी सुन्दरताई देख दर्शकवृन्द मुग्ध होते थे । रघुके जन्म होनेसे राजा रानीका परस्पर अनुराग और भी बढ़ गया । यथासमय रघु 'मा', 'दा' आदि शब्द कह कह कर अपने माता पिताको आप्यायित करने लगे । उनकी तोतली बोली अमृतसे भी मिष्ट मालूम होती थी । बालक पुत्रको दो चार पांव चलते और कहनेपर प्रणाम करते देख माता पिता फूले नहीं समाते थे । इस प्रकार नानाविचित्र बाल-क्रीडा करके रघु अपने माता पिताका जीवन सुखमय करने लगे ।

फिर उनका चूडाकरण संस्कार हुआ और जब उन्होंने पांचवें वर्षमें पदार्पण किया तब पिताने उन्हें मन्त्रिकुमारोंके सहित पाठशालामें बैठाया। रघु बड़े तीव्र बुद्धिके थे, उनकी स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी। अल्प समयहीमें वे सब विद्या सीख गये। फिर उन्होंने शस्त्र विद्याका अभ्यास किया और उसमें भी अपार पटुता प्राप्त कर ली। अपने पिता दिलीपके तुल्य बड़े भारी धनुर्धर हो गये।

धीरे धीरे यौवन-काल उपस्थित हुआ। रघुका शरीर विद्या पूर्ण होनेसे गम्भीर और अतीव शोभायमान दीखने लगा। यथासमय मुण्डन और विवाह कार्य भी निर्विघ्न समाप्त हुए। दिलीपने अपने पुत्रको सर्व गुण सम्पन्न अथ च उपयुक्तपात्र विचार कर युवराज पदपर नियुक्त किया। पिता पुत्रका अतुल प्रभाव देखकर उनके शत्रु थर्राने लगे।

अपने धनुर्धर पुत्रको यज्ञाश्वोंके रक्षा कार्यमें नियुक्त कर दिलीपने ९९ अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न समाप्त किये। अन्तमें सौवें अश्वमेधके लिये घोड़ा छोड़ा गया। घोड़ा आगे २ जा रहा है। पीछे २ उसके रक्षक सैनिक और युवराज रघु जा रहे हैं। इस अवसरपर इन्द्रने अपने विद्या-प्रभावसे घोड़ेको हर लिया और यह बात किसीको मालूम न हुई। घोड़ेको न देखकर रघु बहुत ही चकित और दुःखित हुए। 'अब क्या करना चाहिए' यह सोचकर

वे घबराने लगे। ठीक उस समय वशिष्ठकी प्यारी गाय नन्दिनी वहां आ पहुंची। उसके पसीनेको आँखमें अञ्जनकी भाँति लगाते ही युवराज रघुकी दृष्टि दिव्य हो गई और वे पूर्वकी ओर आंख फेरकर क्या देखते हैं कि इन्द्र उनके यज्ञाश्वको हरण करके लिये जाता है हरित वर्णके घोड़े रथमें जुते हुए हैं और वह सहस्र नयनोंसे चारों ओर देख रहा है। रघुने गगनस्पर्शी गम्भीर स्वरसे इन्द्रसे कहाः—हे देवराज! आप यज्ञकर्ताओंके सहायक होकर भी क्यों इस यज्ञाश्वको चोरकी भाँति हरकर लिये जाते हैं? जब आप जैसे धर्मात्मा ऐसा कर्म करेंगे तब धर्म किसके सहारे पृथ्वीपर रहैगा। इससे विनय है कि आप इस घोड़ेको छोड़ दें। पर इन्द्रने रघुकी बातको कुछ न समझा और बोले रघु, तुम्हारा कहना सत्य है। परन्तु यशोधनियोंको अपनी यशोरक्षा करना भी कर्त्तव्य है। तुम्हारे पिता ९९ यज्ञ कर चुके। अब सौवाँ यज्ञ आरम्भ कर वे हमारी जगद्विख्यात कीर्तिको लोप करना चाहते हैं। जैसे पुरुषोत्तम कहनेसे विष्णुका और महेश्वर कहनेसे शिवका बोध होता है वैसे ही 'शतक्रतु' (सौ यज्ञ करनेवाला) कहनेसे इन्द्रका बोध होता है। ये तीनों शब्द किसी दूसरेकी उपाधि तुल्य कदापि व्यवहृत नहीं होते। यदि तुम्हारे पिताका यह सौवाँ यज्ञ पूर्ण हो जाय तो वे निश्चय 'शतक्रतु' हो जायँगे और

मेरी कीर्ति लुप्त हो जायगी। हम इसे सह नहीं सकते और इसी लिए यज्ञाश्वको हर कर ले जाते हैं। यदि तुम अपना भला चाहते हो तो घर जाव नहीं तो महर्षि कपिलके निकटसे घोड़ा छुड़ानेके यत्नमें सगर राजाके पुत्रोंकी जैसी दुर्गति हुई वैसी तुम्हेंभी भोगनी पड़ेगी।

यह सुन रघु निर्भय चित्त हो इन्द्रसे बोले कि यदि आप घोड़ा छोड़ना नहीं चाहते तो युद्धके लिये तैयार हो जाइये। समझ रखिये कि विना रघुको जीते आप घोड़ा नहीं ले जा सकेंगे। इन्द्र आकाश मार्गमें विमानपर थे। रघुने उनपर वाण छोड़ा। वाण इन्द्रके हृदयपर लगा। इन्द्रने इससे क्रोधित होकर एक अमोघास्त्र रघुके हृदयपर मारा अस्त्र रघुके हृदयपर घुस गया। किन्तु धनुर्धर रघु उस कठोर प्रहारकी पीडाको तिलमात्र न गिनके इन्द्रपर फिर वाण मारने लगे। वाण इन्द्रके कन्धेपर लगा और एक शस्त्रने उनकी रथकी ध्वजा भी काट गिराई। इसपर इन्द्र अधिकतर क्रोधी हो रघुपर वाणकी वृष्टि करने लगे। इस प्रकार परस्पर घोर युद्ध होने लगा। परन्तु कोई किसीको जीत नहीं सकता था। एक एकसे बढ़ चढ़के थे, फिर अर्धचन्द्रमुख बाण द्वारा रघुने इन्द्रके धनुषके गुणको काट गिराया। इन्द्रने टूटे हुए धनुको छोड़कर बड़े क्रोधसे रघुपर वज्रास्त्र प्रहार किया। घनघोर गर्जन सहित दिशाओंको आलोकित करता वह अस्त्र रघुके शरीरपर

गिरा। रघु मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े। उनके सैन्यमें हाहाकार मच गया। रघु एक ही क्षणमें हृदयदाही वज्राघातकी व्यथाको दूरकर जब बाण ले खड़े हुए तब उनके सैनिकगण विषाद छोड़कर जयध्वनि करने लगे।

इन्द्र यह देख रघुके असाधारण बल वीर्यकी मन ही मन प्रशंसा करने लगे। फिर बोले हे राजपुत्र! तुम्हारी अलौकिक शक्ति देख मैं बहुतही सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ। मेरे इस अमोघ वज्रास्त्रके आघातके सहन करने वाला त्रिलोकमें कोई नहीं दीखता। पर्वतोंपर पड़नेसे वे भी इसके आघातसे चूर्ण हो जाते हैं। किन्तु धन्य है तुम्हारे अतुल पराक्रम और सुदृढ़ कलेवरको जो तुम अनायास इसके प्रहारको सहसके। तुम्हारे इस असीम बलवीर्यको देखकर मैं अतीव प्रसन्न हूं। तुम मुझसे वर मांगो। इस घोड़ेको छोड़कर जो कुछ तुम मांगो सो मैं देनेको राजी हूं।

रघुने कहा भगवन्! आप अश्वको छोड़ना नहीं चाहते तो कृपा करके यह वरदान दीजिये कि जिससे हमारे पिता इस सौवें यज्ञके फलभागी हों। हम रक्षणीय वस्तुको खोकर बहुत लज्जित हुए हैं। पिताजीके पास यह समाचार स्वयं नहीं सुना सकते। इससे आपके किसी दूत द्वारा आप यह समाचार हमारे पिताकी सभामें कहला भेजें।

इन्द्र रघुकी प्रार्थना सुन तथास्तु कह स्वर्गको चल दिये। रघु भी अपनी इच्छा पूरी हुई देख अयोध्याको लौटने लगे।

इधर इन्द्रका दूत दिलीपकी सभामें आया और रघु और इन्द्रके युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त सभामें कह स्वर्गको लौट गया। रघुकी वीरता और पराक्रम श्रवणकर राजा दिलीप वहुत ही आनन्दित हुए।

अव रघु अयोध्यामें पहुंचे। दिलीपने सभासदों सहित पुत्रका वड़े प्रेमसे आगत स्वागत किया। उनके वज्राहत शरीरपर स्वहस्त फेरकर दिलीपने पुत्रका अभिनन्दन किया। इसप्रकार सौवां यज्ञ विधिवत् पूरा न करके भी राजा दिलीप इन्द्रके वरके अनुसार उसके फलभागी हुए और विषय वासना परित्याग कर रघुको अखण्ड भूमण्डलका राज्यभार समर्पण किया। अन्तको वाणप्रस्थाश्रम धारण कर राजा दिलीपने अपनी स्त्री सहित तपोवनको गमन कर जीवनका शेष—भाग यापन किया।

चौथा सर्ग।

रघु राज-सिंहासनपर आरूढ़ हो सायङ्कालकी अग्निके तुल्य पहलेकी अपेक्षा अधिकतर प्रदीप्त हो उठे। उनके शत्रु कांपने लगे। राज्यकी दिन दिन उन्नति होने लगी। प्रजा वड़े सुखसे रहने लगी। रघुके राज्यशासनप्रवन्ध पर प्रजा वहुत ही सन्तुष्ट हुई। राजाकी अपार राजश्री और अतुल विद्याशक्तिको देखकर यही ज्ञात होता था कि, मानो स्वयं

लक्ष्मी और सरस्वती रघुकी सेवाहेतु पृथ्वीपर आई हुई हैं। राजनीति-विशारद मन्त्रिवर्ग राजाको सुनीति और कुनीतिका मार्ग नित्य दिखलाया करते थे। राजा असत्पक्ष परित्याग कर सन्मार्गमें प्रवृत्त हुए।

क्रमशः शरद् ऋतु उपस्थित हुई। आकाश स्वच्छ हो गया। बादल बिला गये। सूर्यकी किरणें तीखी हो उठीं। दशों दिशाएं समुज्वल हो गईं। आकाशमें इन्द्रधनुषका चिह्न तक न रहा। सर सारिताओंका जल निर्मल होने लगा और उसमें कुई, कमल आदि प्रस्फुटित हुए। तारामण्डल प्रदीप्त हो उठा। रात सुहावनी मालूम पड़ने लगी। मराल--समूह निर्मल नदीके जलमें केलि करने लगे। काश-कुसुमके गुच्छ विकसित होकर पृथ्वीको स्वच्छ वस्त्र पहनाने लगे। कृषकगणोंकी स्त्रियां धानोंकी रखवालीके लिये खेतोंमें जा ईखकी छायामें बैठ आनन्दपूर्वक रघुके गुण गान करने लगीं। मदमत्त वृषभवृन्द इधर उधर नदीतीरमें निःशङ्क घूमते हुए डरावना गर्जन करने लगे। सेना-गजसमूह खिलेहुए सप्तपर्ण फूलोंकी सुगन्धिसे उत्तेजित होकर मदमत्त होने लगे। नदियां स्वल्पजल और मार्ग शून्य हो गये।

रघु राजाने ऐसे मधुर शरत्कालकी रमणीयता देखकर दिग्विजयके हेतु जानेकी इच्छा की। इस विचारसे वे चारों ओरसे फौज इकट्ठी करने लगे। फौज इकट्ठी हो गई। राजा

इस प्रकार पूर्वदेशके सब प्रदेशोंको जीतकर रघु राजा पूर्वी समुद्रके निकटवर्ती ताल वृक्षोंसे पूर्ण शुम्भनामी प्रदेश-में उपस्थित हुए । वे अभिमानी पुरुषोंके संहार करनेवाले और विनीत मनुष्योंके रक्षाकर्त्ता थे । शुम्भदेशका राजा रघुसे बड़े नम्रभावसे मिला । इससे उदारहृदय रघुने भी उसकी रक्षा की । वङ्गालके बहुतसे राजे रण नौकाओंमें चढ़कर रघुसे लड़ने आए थे । रघुने उन सबको हराकर गङ्गाके उपद्वीपमें अपनी जीतका झण्डा खड़ा करा दिया । ये राजे रघुद्वारा पदच्युत किये गये थे । फिर रघुने उन्हें उनके राज्य दे दिये । इन राजा-ओंने उखाड़कर बोये हुए'रोपाधान' की भाँति सिर झुका-कर रघुका चरण चुम्बन किया और उन्हें बहुत रत्न धनादि भेंटमें दिये ।

इसके पीछे हाथियोंके पुलद्वारा कपिशा नदीको सैन्य सहित पार कर राजा उत्कल देशमें पहुँचे । वहां उन्हें किसीसे युद्ध करना न पडा । वहांके राजालोग भय पाकर रघुकी अगवानीके लिये स्वयं आये थे । उत्कलदेशवासियोंने रघुको कलिङ्ग देशका मार्ग दिखला दिया और वे उसी ओर बढे । कलिङ्ग देशमें पहुंचकर रघुने सेना सहित 'महेन्द्र' नामक पर्वतपर डेरा किया । कलिङ्ग देशका राजा हाथीपर सवार हो सेना सहित रघुपर आ चढ़ा । रघुने उसे शीघ्र ही जीतकर स्ववशमें कर लिया । रघु धर्मविजयी राजा थे ।

उन्होंने कलिङ्ग राजाको मुक्तकर राज्य सिंहासनपर पुनर्वार बैठाया; उसके राज्यको उसे लौटादिया। रघुने केवल उसकी राज्य—श्रीहीका हरण किया।

इसके पीछे रघु लवणसागरके किनारे किनारे दक्षिण देशकी ओर रवाना हुए। फल-पुष्पसे लदी हुई सुपारीवृक्ष-मालासे यह मार्ग बड़ा ही सुखदाई हो रहा था। शत्रुओंको सहजहीमें जीतते क्रम क्रम रघुराजा कावेरी नदी पारकर दक्षिण समुद्रके तीरपर सुशोभित मलयपर्वतके पास पहुंचे। मलयपर्वतका निकटवर्ती जो स्थान है वह बड़ा ही रमणीय है। वहां मारीच वनमें हारीत (हरियल) पक्षीगण भ्रमण कर रहे हैं। मनोहर एलालता (इलायची) फलोंसे लदी हुई झुक रही हैं। चन्दनके पेड़ोंपर सांपोंकी रगड़से बने हुए चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। स्थान स्थानमें सुपारी, नारियल, ताल, हिन्ताल आदिके ऊंचे ऊँचे वृक्ष सुशोभित हैं। तमाल वृक्षोंसे हरएक स्थानमें अन्धकार हो रहा है। पर्वतकी चोटीपरसे स्वच्छ जलके झरने गिर रहे हैं। कहीं विहङ्गगण मधुर स्वरसे चहक रहे हैं। कहीं रङ्ग बिरङ्गके फूल खिले हुए पर्वतकी शोभा बढ़ा रहे हैं। फूलोंकी सुगन्धसे अन्ध होकर भौंरें मधुर मधुर गुञ्जार करते डोल रहे हैं। इस प्रकारकी अनुपम शोभा और रुजहारी सुगन्धित पवन सबका मन हर रही है। मलय पर्वतके पास पाण्डु नामक

एक प्रसिद्ध देश है । यहांका राजा रघुका अतुल प्रताप देख बड़े विनीत भावसे उनकी शरणमें उपस्थित हुआ । ताम्रपर्णं नदी और समुद्रके सङ्गम स्थानपर पाए हुए बहुमूल्य रत्न उसने रघुको उपहारमें दिये ।

रघु मलय तथा दर्दुर पर्वतोंपर कुछ दिन रहकर अन्यान्य राजाओंको जीतनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर बढ़े। 'सह्य' पर्वत पार कर क्रमशः रघु केरल देशमें पहुँचे। यहां मुरला नामकी एक प्रसिद्ध नदी है। रघु उसीके किनारे पर टिके। केतकी फूलोंकी सुगन्धि, ताल वृक्षोंके पत्तोंकी 'मरमर, आवाज, खजूरके वृक्ष तथा पुन्नागके फूलोंपर बैठे हुए भौंरे लोगोंके मनको मुग्ध कर रहे थे। यहांके राजाओंने रघुको कर देकर अपनी रक्षा की। इस प्रकार रघुने सहजहीमें पश्चिम देशके राजाओंको हरा दिया और त्रिकूट पर्वतपर अपनी जीतका झण्डा गड़वा दिया ।

फिर पारस्य देशके राजाओंको जीतनेकी इच्छासे महाराज रघु स्थलमार्गसे पारस्य देशकी ओर मुड़े। पारस्य देशीय राजाओंने-रघुके साथ घोर युद्ध किया था। रघु उन राजाओंके घोडोंके बल देखकर विस्मित हुए थे। अयोध्याधिपतिने उन सबको हरा दिया । जो शेष राजालोग बचे थे वे अपनी अपनी पगड़ी उतार रघुकी शरणमें आये । रघुने उन्हें क्षमा-भिक्षा दी। जीतकी खुशीमें रघुके सेनागणोंने आनन्दसे मधुपान किया ।

फिर सिन्धु नदीके किनारे किनारे वे उत्तरकी ओर जाने लगे। वहां हूण देशके राजाओंको हराकर काम्बोज देशके राजाओंपर उन्होंने आक्रमण किया। काम्बोजके राजाओंने रघुसे युद्धमें हारकर उनसे सन्धि कर ली और अच्छे अच्छे घोड़े आदि उन्हें उपहारमें दिये।

इसके बाद रघु राजा हिमालय पर्वतके ऊपर जानेकी तैयारी करने लगे। और घोड़ेपर सवार हो अपने योद्धाओंको सङ्गमें ले हिमालयपर चढ़ने लगे। हिमालयकी शोभा अकथनीय थी। कस्तूरी-गन्धसे पूर्ण शीतल पवन राहकी थकावट मिटानेकी मानो औषधि थी। हिमालयके ऊपरी भागमें जो औषधियाँ हैं वे रात्रिके समय प्रज्वलित हो उठती हैं। रात्रिके समय इन औषधियोंने रघु राजाके लिये बिना तेलके दीपकका काम किया, पर्वत-वासी जङ्गली मनुष्य रघुके भयसे घर छोड़ दूर भाग गये।

हिमालयके ऊपरी भागमें उत्सवसङ्केत नामकी एक असभ्य जाति रहती थी। इन लोगोंने रघुसे घोर युद्ध किया परन्तु अन्तमें हारकर रघुके शरणमें आए। इसी भाँति और और जङ्गली जातियोंको हराकर रघु हिमालय पर्वतसे उतरे। फिर लौहित्या नदीके पार होकर रघुने प्राग्ज्योतिष नामक देशपर चढ़ाई की। वहांके तथा कामरूपके राजाओंने रघुकी शरणमें आकर अपनी प्राण-रक्षा की और नानाभाँतिके उपहार भी दिये।

इस प्रकार अपना दिग्विजय पूरा कर रघु अपनी राजधानी अयोध्यापुरीमें लौट आये । फिर वे अपने दिग्विजयकी खुशीमें 'विश्वजित्' नामक यज्ञ करने लगे इस यज्ञके करनेमें यज्ञकर्त्ताको सर्वस्व दान कर देना पड़ता है । रघुने दिग्विजय करके जितना धन इकट्ठा किया था और जो पूर्व सञ्चित द्रव्य उनके पास था, सबको इस यज्ञमें उन्होंने व्यय करदिया । यज्ञ समाप्त होने-पर रघुने सब निमन्त्रित राजाओंको पुरस्कार देकर विदा किया और अयोध्यापुरीमें सुखपूर्वक राज्य करने लगे ।

पांचवां सर्ग ।

एक समय कौत्स नामका एक ऋषिरघु राजाके पास आया । उसे अपने गुरु महर्षि वरतन्तुको गुरु-दक्षिणा देनेके लिए धनकी जरूरत थी । रघु विश्वजित यज्ञमें सर्वस्व दान कर चुके थे उन्हें लाचार होकर कौत्स ऋषिको मिट्टीके बरतनमें अर्घ्य (पूजा विशेष) प्रदान करना पड़ा । कौत्स इससे बहुत हताश हुआ । राजाने बड़ी खातिरीके साथ कौत्ससे उसके आनेका कारण पूछा । कौत्स बोला कि महाराज यह मेरे दुर्भाग्य हीका कारण है जो असमयमें (बेमौके) मैं आपसे धन मांगने आया । इस समय आपसे धन मांगना अन्याय है, क्योंकि चक्रवर्ती राजराजेश्वर होकर भी आप यज्ञ करनेके हेतु अकिञ्चनसे हो गये हैं । क्षमा कीजिए और आज्ञा दीजिए ता कि मैं किसी दूसरे दानीके पास जाकर गुरुदक्षिणाके लिए

धन मागूँ। यह कह वह ऋषि चलने लगा। राजाने उसे ठह-राकर बड़े विनीत भावसे पूछा कि आपको कितना द्रव्य चाहिए।

कौत्सेने कहा चौदह करोड़। रघु बोले हे ऋषि! यदि आप मेरे यहांसे निराश होकर लौट जायंगे तो संसारमें मेरी बड़ी भारी निन्दा होगी। निन्दा मृत्युसे भी अधिक दुःख-दायी, है और फिर नामी और कीर्तिमान लोगोंके पक्षमें वह विना जले भस्म बनानेवाली है। इससे आपसे मैं विनय कर-ताहूं। आप मुझे कलंकसे बचाइए। आप हमारे यहां अग्निहोत्रशालामें दो तीन दिन कृपा करके ठहरिए। आपकी गुरु-दक्षिणाके लिये मैं भरसक मेहनत करूंगा। ऋषि रघुके कहनेपर बहुत खुश हुआ और अग्निहोत्रशालामें गया।

रघुने मनमें सोचा कि पृथ्वीके सब राजा महाराजा-ओंको तो मैंने जीत लिया अब किसपर चढ़ाई कर इतना धन इकट्ठा करना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने कुवेर-पुरीपर चढ़ाई करनेकी तैयारी की। और लड़ाईमें चलनेके पहले दिन सन्ध्याके समय वे अपने रथपर ही सो रहे। ठीक उसी रातको उनके खजानेमें सोनेकी वर्षा हुई। उनका खजाना सोनेसे भर गया खजाञ्ची लोग सवेरे खजानेको सोनेसे भरा देखकर बहुत चकित हुए। और रघुको इस बातकी खबर दी। रघु जान गये कि कुवेरने लड़ाईके डरसे सुवर्ण वृष्टि द्वारा मुझे प्रसन्न किया।

रघुने फिर उस सब सोनेको ऋषिको दे अपने ऊंटों और घोड़ोंपर सबको लदवाकर उसे विदा किया । ऋषि बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और राजाको प्रसन्न चित्तसे आशीर्वाद किया कि आपका आपहीके तुल्य प्रतापी, दानी और धार्मिक पुत्र हो ।

कुछ दिनके पीछे रघुका एक पुत्र हुआ उन्होंने उस पुत्रका नाम 'अज' रखा । अज दिन दिन बढ़ने लगा और शीघ्र ही सब विद्याओंको पढ़ गुन कर तैयार हो गया अधिक कहना व्यर्थ है अज, रूप, गुण, विद्या बुद्धि पराक्रममें रघुसे भी बढ़ चढ़ कर था ।

यथासमय विदर्भके राजा भोजने अपनी बहन 'इन्दुमती' के स्वयम्बरके हेतु अजको निमंत्रित किया । स्वयम्बरके लिए विदर्भको जाते समय अज नर्मदा नदीके तीरपर पहुँचे । नर्मदा नदीका किनारा बड़ाही मनोहर स्थान है। वहां सुशीतल पवन बह रही थी और फूलोंके सुवाससे चारों दिशा सुगन्धित हो रही थीं । अजने उस रमणीय स्थानको देखकर वहीं ठहरनेकी आज्ञा दी ।

अज नदीकी शोभा देखने लगे तो क्या देखते हैं कि बहुतसे भौंरे पानीके ऊपर 'गुणगुण' शब्द कर रहे हैं किन्तु वहां उनके बैठनेके लिए कमल आदि कुछ नहीं है। यह देख वे आश्चर्य करने लगे । भांति भांतिकी कल्पनाएँ कर

रहे थे कि इतनेमें एक जङ्गली हाथीका सिर देखपड़ा। वह जंगली हाथी सेनागजोंको देखकर बड़े गुस्सेमें सुण्ड उठाकर चीत्कार शब्द करते पानीसे उठने लगा। उसे उठते देखकर सेनाके हाथी रथोंकी रस्सियां तोड़कर इधर उधर भागने लगे। सेनामें खलबली मचगई। स्त्रियोंकी रक्षाके लिये योद्धा और सिपाहीगण उनके चारोंओर घेरा बांधकर खड़े हो गये।

अजने यह देखकर उस पानीमें खड़े हुए हाथीपर एक बाण मारा। बाण हाथीके कुम्भपर लगा। बाणके लगते ही हाथी अपनी देह त्यागकर एक दिव्य सुन्दर गन्धर्व बन गया। अजके पास आकर उनपर फूलोंकी वर्षा करते उसने कहा हे राजपुत्र! मैं प्रियदर्शन नामक गन्धर्वपतिका पुत्र हूं। मेरा नाम प्रियम्वद है। मतंग मुनिके शापसे मैं हाथी हो गया था और उन्हींके कहनेके अनुसार आपके बाणके स्पर्शसे मैं शापसे छूट गया। आपकी इस कृपाके बदले मैं आपको यह एक अस्त्र देता हूं। इसे लीजिये। इसका नाम सम्मोहन है। इसके द्वारा मारनेपर शत्रु मोहनिद्रामें अचेत हो जाते हैं। विना शत्रुके मारे जीत हो जाती है।

अजने प्रियम्वदके दियेहुए अस्त्रको ले लिया। इस भांति

दोनोंमें मित्रता होगई। फिर अज विदर्भको और प्रियम्वद चैत्ररथको रवाना हुए।

अज विदर्भ नगरीमें पहुंच गये। विदर्भके राजा भोजराजने उन्हें तथा उनके साथके सैनिकगणोंको बड़े आदरके साथ रक्खा।

छठा सर्ग।

स्वयम्वरका दिन आ गया। अज बढ़िया पोशाक पहनकर सभामें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सभा बड़ी ही सुन्दरताके साथ सजाई गई है। चारोंओर मनोहर मनोहर मञ्च रखे गये हैं उनपर कीमती कपड़े बिछे हुए हैं जिनकी झालरोंपर मोती, हीरा, लाल आदि लटक रहे हैं। हरएक मञ्चपर सोनेका सिंहासन धरा हुआ है। मतलब यह कि सभाकी शोभा बड़ी मनोहारिणी थी।

विदर्भ राजाने जब अजको आते देखा तब बड़े प्रेमसे आदरपूर्वक उठकर उनके हाथको पकड़कर एक मञ्चके निकट लेगये और बोले कि आप यहाँ बैठिये। अज उसपर जाके बैठ गये। इसी प्रकार सब आये हुए राजागण अपने अपने दिखलाये मञ्चोंपर बैठ गये।

इतनेमें भोजकी बहन इन्दुमती विवाहके बढ़िया कपड़े पहनकर अपनी सखी सहेलियोंको संग लिए सभामें आई। उसकी सुन्दरता देखकर बहुतसे राजा मोहित हो गये।

कितने ही चित्रकी नाईं उसे एकटक देखते रह गये। कपड़े,लत्ते मुकुट आदि इधर उधर हो जानेके कारण इन्दुमती कहीं हमें ना पसन्द न करदे इस विचारसे कितनेही राजा झटपट अपने कपड़े सम्हालने लगे; कितनेही अपने मुकुट ठीक करने लगे।

इन्दुमतीकी सुनन्दा नामकी एक दासी थी। वह सब राजाओंके कुल शील आचार व्यवहार जानती थी सुनन्दा इन्दुमतीको सबसे पहले मगधके राजाके पास लेजाकर कहने लगीः—मगध देशमें पुष्पपुरी नामकी एक नगरीहै। यह महाराज उसी नगरीके राजाहैं। आपका नाम परन्तप है। आप बड़े प्रजापालक प्रतापी न्यायी और धार्मिक राजाहैं। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इनका पाणिग्रहण करो। यह कह सुनन्दा चुप हो रही। इन्दुमती कुछ न कह शिर झुकाकर वहाँसे आगे बढ़ी। इसी भांति अङ्गदेशके राजा, अवन्तीदेशके राजा, अनूप देशके राजा (प्रतीप) मथुरा पुरीके राजा (सुषेण), महेन्द्र देशके राजा तथा पाण्डु देशके राजा (पाण्डु) आदिके कुल, शील, रूप, गुण, बल, बुद्धि, पराक्रमका वर्णन करती हुई सुनन्दा इन्दुमतीको सभामें लेती चली। किन्तु इन्दुमतीने उनमेंसे एकको भी पसन्द न किया। आखिर सुनन्दा इन्दुमतीको साथमें ले अजके निकट पहुँची और इस प्रकार उनके कुल, शील, रूप, गुण, बुद्धि बल आदिका वर्णन करने लगीः—

यह राजकुमार सामान्य नहीं हैं। भगवान सूर्यके पुत्र मनु नामके एक सुप्रसिद्ध राजा थे। महाराज मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। उनके विशुद्ध वंशमें पुरञ्जय नामके एक बड़े गुणी राज-ऋषि थे इन्होंने सदेह स्वर्गारोहण किया था और इन्द्रके साथ एक ही आसनमें बैठा करतेहैं और समय पड़नेपर ऐरावत हाथीपर एक साथ बैठकर शत्रुओंसे युद्ध किया करते हैं। एक समय देवता और असुरोंमें घोर युद्ध हुआ था। पुरञ्जय उन असुरोंको लड़ाईमें न हरा सके। इससे उन्होंने महादेवका रूप धरकर एक बैलरूपी महेन्द्रपर सवार हो असुरोंको हराया था। बैलके ककुद (कन्धे) पर सवार होनेके कारण, तबसे उनका नाम (ककुत्स्थ) पड़ा इसके पीछे कोशल देशके राजाओंने अपने वंशको 'ककुत्स्थ' नामसे विख्यात किया। महाराज ककुत्स्थके कुलमें 'दिलीप' नामके एक विख्यात और प्रबल प्रतापी राजा हुए। दिलीप असाधारण गुणसंपन्न और पराक्रमी थे। उन्होंने ९९ यज्ञ निर्विघ्न समाप्त किये। सौवां अश्वमेध यज्ञ वे केवल इन्द्रराजकी ईर्ष्यासे न करने पाये। उन्हींके पुत्र 'रघु' राज्यशासन कररहेहैं। उनके गुण अवर्णनीय हैं। यह परमसुन्दर कुमार उन्हीं रघुके सुयोग्य पुत्रहैं। इनका नाम 'अज' है। यह पिताके दिये हुए यौवराज्य लाभकर पिताकी भांति प्रजाओंका पालन कररहेहैं। पिता इनपर

राज्यभार सौंपकर आनन्दसे ईश्वरके भजन पूजनमें दिन बिता रहेहैं। क्या रूपमें, क्या गुणमें, क्या विद्यामें और क्या पराक्रममें अज तुम्हारे ही योग्य हैं। इससे जब तुम्हें रुचे तो इन्हें 'जयमाला, से भूषित करो। यह कह सुनन्दा चुप हो रही।

इन्दुमती लाज छोड़कर अजकी ओर एक टक लगा देखने लगी। उनका मन नयनके द्वारसे अजके सौंदर्यपर जा अटका। फिर उन्होंने सुनन्दासे कहा कि, ले यह जयमाला उन्हीं राजकुमारके गलेमें डाल आ। सुनन्दाने इन्दुमतीके कहनेपर जयमाला अजको पहना दिया।

यह देखकर पुरवासी बहुत ही सन्तुष्ट और आनन्दित हुए।

सातवां सर्ग।

भोज़राज अब वर कन्याको अपने घरमें ले जानेके लिये तैयार हुए। सभामें आये हुए राजा लोग हताश हो हो कर अपने अपने डेरोंमें लौट गये।

राजमार्गके दोनों ओर ध्वजाएं फहरा रहीहैं। हरएक स्थानमें इन्द्रधनुषकी भांति तोरण शोभितहैं। जिनपर नानाभांतिके फूलोंकी मालाएं लटक रही हैं। वर कन्या हाथी हथनीपर सवार होकर ऐसे सुहावने राजपथकी शोभा देखते भोजराजके भवनद्वारपर पहुंचे। अपनी अपनी सवारीसे उतरकर उन्होंने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। वहां भोजरा-

जने अजको सुन्दर सिंहासनपर बैठाकर अर्घ्य (पुष्प चन्द-नादि पूजनसामग्री) मधुपर्क (दही, घी और शहद मिली हुई चीज) और वस्त्र प्रदान किये । इसके पीछे सुहासिन-वृन्द वरको बड़ी नम्रतापूर्वक प्रेम सहित कन्याके पास ले-गईं । वहां फिर पुरोहितने वेदविधिसे हवन किया और अग्नि-को साक्षी देकर अजको इन्दुमतीका पाणि--ग्रहण कराया । इसके पीछे वर कन्याने कुटुम्बके समस्त गुरुजनोंको प्रणाम किया और उनका शुभ आशीर्वाद प्राप्त कर आनन्दित चित्त-हुए । इन्दुमतिका शुभ विवाह होजाने बाद भोजराजने अपने नौकरोंको आज्ञा दी कि स्वयम्वरमें जो जो राजा लो-ग आयेहैं उन सबके डेरोंमें जा जाकर उन्हें हमारी भेंट उपहार दे आओ । नौकरोंने आज्ञानुसार सब राजाओंको उचित उपहार प्रदान किये । स्वयम्वरमें आये हुए राजालोग उपहार पाकर खुश हुए और बदलेमें भोजराजको अपनी अपनी ओरसे उपहार अर्पण कर अपने अपने घरको गये ।

महाराज रघुने सब राजाओंको जीतकर दिग्विजय कर लियाहै । रघुके पुत्र अज सब राजाओंको रूप यौवन बुद्धि बलसे जीतकर इन्दुमतीके प्रेमपात्र पति होगयेहैं । इसको देख सब राजा क्रोध और इर्षासे जल उठे और सब इकठे होकर रास्तेमें अजपर हमला करनेका अवसर ताक रहेहैं।

इधर अज इन्दुमतीको संगमें लेकर सेनासहित विदर्भ पुरीसे अयोध्याके लिए रवाना हुए । साथमें भोजराज भी

होलिये। तीन दिन अजके साथ रहकर भोजराज अपने नगरको लौट गये। अब अज अकेले होगये। उनको असहाय जानकर उन दुष्ट राजाओंने उनपर हमला किया। अज इससे जरा भी नहीं घबराये और इन्दुमतीकी रक्षाका भार अपने मंत्री और कुछ सैनिकों पर छोड़ उस असंख्य राजसेनाके हमलेको रोकने लगे। दोनों पक्षोंकी सेना मुहं भेंट होगई पैदल पैदलोंसे, सवार सवारसे रथी रथीसे, और हाथीवाले हाथीवालोंसे युद्ध करने लगे। हाथी घोड़ोंकी चीत्कार-ध्वनिसे कर्ण बधिरप्राय हो गये घोड़ोंकी खुरोंकी मारसे धूल चारोंओर छा गई। हाथियोंके सूपोंके सदृश कानोंके हिलनेसे भूमिसे उड़ उड़कर आकाशमें छाने लगी उस समयका दृश्य बड़ा ही अद्भुत होउठा। रणभूमिमें अन्धकार छा गया। मार मारका शब्द चारोंओर होने लगा। घोड़े हाथी कट कटकर भूमिपर गिरने लगे। रक्तकी नदी बहने लगी। अजकी विकट मार देखकर शत्रु भागने लगते फिर लौटकर आते। बाण नष्ट होनेपर वाहनसे उतर गदायुद्ध करते और गदा नष्ट होनेपर मल्लयुद्ध करने लगते। इस प्रकार घमसान युद्ध होने लगा। कहीं पर योद्धाओंके कटेहुए शिरके ढेर लगे हैं। कहीं शिरके मुकुट समूह रक्तसे सने पड़ेहैं। कहीं 'कबन्ध' नाच रहेहैं। कोई कोई वीर सम्मुख रणमें प्राणत्याग कर उसी समय सुन्दर वाहनमें बैठ अप्सराओंको

गोदमें लिये अपने नाचते हुए कवन्धको देखते देखते स्वर्गा-रोहण कर रहेहैं। कहीं कहीं दो वीर एक दूसरेकी मारसे ठीक उस समय कट कर नई देह धारण करते हैं। और दोनों एक ही अप्सराके स्वामी बनते हैं।

जिधर शत्रुओंकी विकट मार देखते अज दौड़कर उधर-ही जाते और उन्हें वहांसे हटा देते अजका रथ शत्रुओंके बाणोंसे ढकासा जारहा था। केवल रथकी ध्वजा हीं वायुवेगसे फहरा रही थी। तो भी अजकी मारसे शत्रु काँपने लगे। निदान शत्रुगण क्रोधित होकर "कूटयुद्ध" द्वारा अजको घेरकर उनपर बाण बरसाने लगे। उस समय अज भी घब-राने लगे। फिर गन्धर्व राजपुत्र प्रियम्वदने उन्हें जो अस्त्र प्रदान किया था उसी अस्त्रको अजने धनुषमें सन्धान किया। उस अस्त्रके प्रभावसे सारी शत्रुसेना अस्त्र शस्त्र छोड़कर निद्रा देवीकी गोदमें जा पड़ी। अज इस प्रकार शत्रुओंपर विजय लाभकर शङ्खध्वनि करने लगे। उनके सैनिकगण शङ्खनाद सुनकर जान गये कि अजको जय-लाभ हुआ और सब रणभूमि पर पहुँचे। मुकुलित कमलवनमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमण्डलकी जैसी शोभा होतीहै वैसे ही निद्रित शत्रु सेनाके मध्यमें युवराज अज शोभा पारहेहैं।

अजने रक्त और बाणोंके द्वारा शत्रुओंके रथोंकी ध्वजा-

ओंमें यह लिखवा दिया कि अज राजाने केवल तुम्हारा यशोहरण ही किया अनुग्रह करके तुम्हारी प्राणहत्या नहीं की।

फिर अजने इन्दुमतीसे कहा कि प्रिये! देखो, इन पराजित शत्रुओंको देखो। मैंने इन सबको ऐसा निर्वीर्य कर दियाहै कि क्षुद्र बालक भी अब उनके हाथसे अस्त्र छीन सकताहै।

तुम्हारी अनुपम सुन्दरतासे मुग्ध हो, सब तुम्हें मुझसे छीननेके लिये महारणमें प्राणदान देनेको तैयार हुए थे। पतिकी वाणी सुनकर इन्दुमती बहुत खुश हुई और पतिकी बल बुद्धिकी प्रशंसा करने लगी।

इस प्रकार महावीर अज अपने शत्रुओंको हरा अपना बायाँ पैर उनके मस्तकोंपर रख अपनी राजधानीको रवाना हुए।

अजके आनेकी खबर दूतोंके द्वारा रघुराजाको मिल गई थी। उन्होंने अपने बेटे बहूको आगत स्वागतसे घरले जाकर उनका विवाह उत्सव समान किया और विषय वासना छोड़कर स्वयं शान्तिपथके पथिक बननेको उत्सुक हुए।

आठवाँ सर्ग।

महाराज रघुने पुत्रके विवाहके पीछे सारा राज्य भार उनको अर्पण किया। महर्षि वशिष्ठने विधिवत् पवित्र जल द्वारा अजकी अभिषेक क्रिया समान की। अज, राजा होकर, अपने पिताके तुल्य राज्य करने लगे। प्रजा अजको

रघुहीके सदृश जानकर उनके प्रति भक्ति और अनुराग प्रकट करने लगी। अज ऊंच नीच किसीका अनादर नहीं करते थे।

छोटे बड़े सबको वे उचित आदर देते थे। प्रजा यही सोचा करती थी, कि अज सबसे अधिक प्रजाओंपर प्रीति करते हैं। अज न तो अधिक उग्र (कड़े) थे न अधिक मृदु (सीधे) थे। जिस भाँति साधारण वेगसे बहती हुई वायु पेड़ोंको न उखाड़कर केवल उन्हें नवा देती है; उसी भाँति अज राजा मध्यम भाव अवलम्बन करनेवाले अभिमानी सामन्तों (जमीदारों) को अपने वशमें कर लेते थे।

रघु इस प्रकार पुत्रको राज्य करते देख आनन्दित हुए और "चौथेपनहि जाय नृप कानन" यह सोचकर वनको जाने लगे। पिताको वन जाते देख अज बड़े नम्र भावसे शोकाकुल हो उनके चरणों पर जा गिरे और सजल नयन पूर्वक उनसे उनके "गृहवास" (अर्थात् घरमें रहकर वाणप्रस्थ धर्म पालन करने) की भिक्षा माँगी। पुत्र वत्सल रघुने अपने पुत्र अजको अतीव दुःखित देखकर वन जाना बन्द कर दिया और राज्य धन तथा भोग विलासको तुच्छ समझकर नगरके बाहर बगीचेमें वाणप्रस्थ धर्मका पालन यथाविधि करने लगे।

अज सांसारिक यश सुखकी प्राप्तिके लिए उत्सुक हुए और रघु सांसारिक सुखोंको तुच्छ समझ स्वर्गसुखके लिए यत्न

करने लगे। इस प्रकार पिता पुत्रकी गति ठीक उलटी हुई। पिताने यति-चिह्न धारण किये और पुत्रने राज-चिह्न। अज राज्यलाभकी आशासे राजनीति विशारद मन्त्रिवर्गके संगमें रहने लगे; रघु परम पदार्थ मुक्तिलाभके लिए योगिवृन्दके संगमें दिन बिताने लगे। अज प्रजाओंके व्यवहार देखनेके लिए यथासमय राजसिंहासनपर बैठा करते थे; रघु अनुध्यान परिचयके लिए पवित्र कुशासनपर आसन जमाते थे। अज अपनी शक्ति द्वारा निकटवर्ती राजाओंको अपने वशमें करते थे; रघु समाधि शिक्षा द्वारा शरीरके प्राणादि पञ्चवायुको वशमें करते थे। नूतन भूपाल शत्रुओंके बुरे कामों और चेष्टा-ओंको समूल नष्ट करने लगे और प्राचीन भूपाल ज्ञानाग्नि द्वारा अपने सांसारिक कर्मादि बन्धनोंको भस्म करने लगे। अज फलाफल विचार करके; सन्धि और युद्धप्रयोग करने लगे। रघु ढेले सोनेको एक समझकर सत्वादि तीनों गुणोंको जीतने लगे। नवीन राजा अचल परिश्रमपूर्वक अपने आरम्भ किये हुए कामोंको फल प्राप्त होते तक करते रहते। प्राचीन भूपाल परमात्मादर्शन पर्यन्त योगानुष्ठानसे नहीं हटे। इस प्रकार कठिन परिश्रमपूर्वक अज शत्रुओंको और रघु इन्द्रि-योंको जीतकर सुखी हुए। रघु योग साधन करते हुए अजकी पितृभक्तिके कारण कई वर्षोंतक जीवित रहे। फिर योगमार्गमें शरीर त्याग कर परमपदमें लीन होगये।

महाराज अज पिताकी मृत्युका हाल सुनकर बहुत ही दुःखित और शोकित हुए। फिर विधिपूर्वक पिताकी अन्तिम क्रिया और श्राद्धादि समाप्त कर नीतिपूर्वक राज्य करने लगे।

कुछ दिनके पश्चात् उनको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। अजने पुत्रका नाम दशरथ रखा। अज इस प्रकार सौभाग्य-वान होकर उत्तम रूपसे राज्यशासन करने लगे। उनके भण्डारमें जो धन था वह परोपकारहीके लिए था। उनका जो सैन्य सामन्त था सो सब विपत्तिमें पड़े हुए दुःखी लोगोंके परित्राणके ही लिए था। उनका जो अतुल शास्त्रज्ञान था वह केवल पण्डित और विद्वानोंके सत्कारके लिए था।

एक बार अज राजा राज्यकार्य्य समाप्त कर अपनी प्यारी इन्दुमतीको साथमें लेकर 'उद्यानविहार' के लिए नगरके उपवनमें गए। वहां वे आनन्दसे विहार करने लगे। उस अवसर पर आकाशमार्गमें देवर्षि नारद हाथमें वीणा लिए कहीं जा रहे थे। उनकी वीणाके अग्रभागमें एक दिव्य कुसुमोंकी माला थी। वह माला वायुवेगसे वीणासे निकल गई और दैवयोगसे इन्दुमतीके विशाल वक्षस्थल पर अचानक आ गिरी। उस मालाको देखते ही इन्दुमती अचेत होकर आंखमूंदे भूमिपर गिर पड़ी। अपनी प्यारीकी यह दशा देख अज राजा भी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देख वहांपर जो उनकी दासदासी थीं सब रोने पीटने लगीं।

फिर वे राजा रानीपर पंखा झलने लगे । अज राजाकी मूर्छा भंग हुई और वे उठे । परन्तु इन्दुमती मृतवत उसीदशामें पड़ी ही रही इन्दुमतीकी मृतदेहको गोदमें लेकर वह आंखोंमें अश्रुधारा बहाने लगे । शोकके वेगमें धैर्य खोकर अज राजा वातुलवत होगए और इन्दुमतीके लिए बहुत विलाप किया । हा ! इन्दुमति ! ! तेरे बिना सेज सूनी और गेह अंधियारा होगया । संसारमें मुझे अब रोनेके सिवा कुछ नहीं सुहाता । इस प्रकार वे रोने लगे । गोदमें मृत इन्दुमतीकी देहको लिए हुए राजा हृदयविदारी रुदन कर रहेहैं । यह देख अजके बान्धववर्गोंने बलपूर्वक इन्दु-मतीकी देहको अजकी गोदसे लेकर विधिवत चन्दनकाष्ठकी चितापर चढ़ा दिया । अज शोककी मारसे इन्दुमतीके साथ भस्म होनेको तैयार होगए थे । परन्तु लोगोंने उन्हें प्रबोध किया और शहरमें ले आए ।

वशिष्ठ ऋषिको योगबलसे राजमहिषीकी मृत्यु और अजकी दशा ज्ञात होगई । उन्होंने राजाकी सान्त्वनाके हेतु अपने शिष्यको उनके पास भेजा । शिष्य अजके पास जाकर पहुँचा और बोला—महाराज आपके दुःखका वृत्तान्त महर्षि वशिष्ठको योगबलसे ज्ञात होगया । आपके दुःखसे वे अतीव दुःखी और शोकित हैं किन्तु वे आजकल एक यज्ञ-कर्ममें लगे हुएहैं । इससे सान्त्वना देनेके लिये खुद न आसके ।

कुछ उपदेश वाक्य कहकर उन्होंने मुझे भेजाहै । द्वी उनके वचन पर संशय न करिएगा क्योंकि वे त्रिकालज्ञ हैं

महाराजने सुना होगा कि तृणबिन्दु नामक एक महा प्रभावशाली महर्षि थे । एक बार उन्होंने कठोर तपस्या प्रारम्भ की । उनकी तपस्यासे देवराज इन्द्र बहुतही शङ्कित हुए और उनकी तपस्याको भङ्ग करनेके लिये 'हारिणी' नामकी एक अप्सराको मुनिके पास भेजा हारिणी तृणबिन्दु मुनिके आश्रममें पहुंचकर मुनिको समाधिसे डिगानेके लिये माया विस्तार करने लगी । महर्षिने अपनी तपस्यामें विघ्न होते देखकर उसे शाप दिया कि " तुम नरलोकमें जाकर मानुषी होओ' शापको सुनकर हरिणी बहुत दुःखित हुई । फिर ऋषिके पास जा उनको साष्टाङ्ग दण्डवत कर हाथ जोड़ बोली महाराज ! मेरी रक्षा कीजिए । इस निरपराधिनीके ऊपर दया कीजिये । मेरा दोष क्षमा कीजिये हम लोग स्वाधीन नहीं, पराधीन हैं । देवराज इन्द्रकी आज्ञासे मैंने इस जोखिमके काममें हाथ डाले । अब आप मुझपर दया कीजिए । मैं आपकी शरणमें आईहूं ।

हारिणीकी विनयवाणीसे कोमल हृदय ऋषिको दया आई । वे उसपर प्रसन्न होकर बोले " हमारा वाक्य अन्यथा होनेका नहीं तुमको स्त्री-शरीर धारण कर भूलोकमें रहना पड़ेगा । जिस दिन स्वर्गका दिव्य पुष्प तुम्हारे दृग्गोचर होगा उसी समय

तुम शापसे मुक्त हो जाओगी और तुम्हें तुम्हारा पूर्व शरीर प्राप्त होगा।

वही शापभ्रष्टा अप्सरा आपकी प्रिय पत्नी इन्दुमतीके रूपमें यहां आई थी। आकाश मार्गमें जाते हुए देवर्षि नारदकी वीणासे गिरी हुई दिव्य पुष्प मालाको देखते ही वह शापमुक्त होकर स्वर्गको चली गई। अब उनके लिये शोक करना वृथा है। इस संसारमें कोई वस्तु चिरस्थायी नहीं है। जिसने जन्म लियाहै वह अवश्य मरेगा। आज हो अथवा कल हो या सौ वर्षके बाद हो जीवधारीकी मृत्यु अवश्य होगी। पृथ्वीपतिकी स्त्री पृथ्वी भी है सो हे महाराज! आप वसुधाको अपनी पत्नी समझकर शोकको त्यागिये। प्राण देने पर भी मृत व्यक्तिसे भेंट होना असम्भव है। धर्मशास्त्रमें लिखाहै कि मृत व्यक्तिके लिए जितना अधिक रोदन करोगे उतना ही अधिक कष्ट उसे होगा यह संसार क्षणभङ्गुर है। कोई किसीका नहीं है। एक दिन सबको चिताकी गोदमें विश्राम लेना है। प्रिय-वियोगसे मूढ़ही दुःखित होतेहैं पण्डित जन नहीं। इष्ट वस्तु नष्ट होने पर पण्डित लोग विषाद करनेके बदले हर्षित होतेहैं क्योंकि उससे उनकी ईश्वरोपासनाका मार्ग अकण्टकित हो जाता है। आप ही कहिये कि आपकी यह देह और जीवन क्या

चिरस्थायी है ? जब अपने परम प्रिय शरीर और जीवात्मा-का संयोग बियोग लक्षित हो रहा है तब पुत्र कलत्रके लिए शोक करना भूल है । सामान्य आदमीकी भांति आपको शोकके वशमें होना न चाहिये ।

इस प्रकार बहुत प्रबोध वचन कह शिष्य चुप हो रहा । अज बोले कि महर्षिकी प्रबोध वाणी हम स्वीकार करतेहैं । फिर शिष्य राजाके पाससे बिदा हो गुरुगृहको चला गया । उस समय दशरथ निरे बालक थे । इतने पर भी राजाका हृदय शान्त न हुआ । तथापि अपनी प्राणप्यारी की प्रतिकृति (चित्र) को देखकर तथा किसी प्रकार धैर्य धारणकर उन्होंने आठ वर्ष व्यतीत किए । फिर प्रियाके विरहदुःखसे उन्हें एक प्राणसंहारी रोगने आक्रमण किया ।

इसके पीछे अजने अपने सर्व गुणालंकृत प्रियपुत्र दशरथ-को राजाके पदपर अभिषिक्त किया । अजका शरीर रोगसे दिन २ जीर्ण होने लगा । फिर वे अपनी देहको त्यागनेके लिए अनाहार व्रत पालन करते हुए परम पवित्र सुरसरी गङ्गा और सरयू नदीके सङ्गमपर जाकर निवास करने लगे । वहाँ कुछ दिन रहकर उन्होंने अपना शरीर त्याग स्वर्गको गमन किया और इन्दुमतीको अप्सराके रूपमें पाकर चिरशान्ति लाभ की ।

नवाँ सर्ग।

राजादशरथ पिताके परलोक गमनके पीछे राजपद पर प्रतिष्ठित होकर विधिवत राज्य करने लगे। उनके उत्तम शासनसे प्रजा बहुत सन्तुष्ट हुई। उनके राज्य भरमें रोगका नाम निशानतक न रहा। चोर लुटेरोंका उपद्रव कहीं पर जरा भी न था। शत्रु शिर तक उठा नहीं सकते थे।

इन्द्र यथासमय पानी बरसाकर अकालका भय मिटा देते थे और मजदूरोंको उनके कामके अनुसार उचित धन मिलता था। पृथ्वी जिस भांति रघु और अजके शासन कालमें सौभाग्यवती थी उससे बढ़कर दशरथके राजत्व कालमें हुई। राजादशरथ धनमें कुबेरके सदृश, शासनमें वरुण, अपक्षपातितामें यम और प्रतापमें सूर्यकी भांति थे। आखेट, जुआ और मद्यपान आदि व्यसन दशरथके सामने फटकने नहीं पाते थे। वे इन्द्र के निकट भी 'ठकुर सुहाती' नहीं कहते थे। हँसी दिल्लगीमें भी झूठ नहीं बोलते थे। शत्रुको भी कटुवाक्य न कहते थे। और बिना कारण जरा भी क्रोध नहीं करते थे। वे शरणागत व्यक्तिके परम मित्र और उद्धत जनोंके प्रचण्ड शत्रु थे। राजा दशरथ ऐसे पराक्रमी वीर्यवन्त वीर. और रणकुशल थे कि वे दिग्विजय यात्रामें जाकर अकेले युद्ध किया करते थे। उनकी सेना उनकी जयघोषणा ही किया करती थी। इस प्रकार उन्होंने सारी

पृथ्वीको वशमें कर लिया था। वे ससागरा धराके स्वामी थे तथापि लक्ष्मीको चञ्चला जानकर उससे अधिक प्रीति नहीं करते थे। फिर उन्होंने कोशल राजाकी कन्या कौशल्या केकय राजवंशजा कैकेयी और मगध राजपुत्री सुमित्रा इन तीनों स्त्री रत्नोंका पाणिग्रहण किया। राजा तीनों रानियोंके सङ्गमें बड़े सुखसे भोग विलास पूर्वक दिन विताने लगे और बड़ी बुद्धिमानीके सहित राज्यकार्यकी भी देखरेख करने लगे। वे दानव युद्धमें भी इन्द्रकी सहायता किया करते थे जिससे स्वर्गमें भी उनकी कीर्ति छाई हुई थी। राजा दशरथ बड़े धार्मिक थे और उनके यज्ञकर्मसे लोग उन्हें 'राजर्षि' कहनेमें भी न सकुचाते थे।

एक समय वसन्त ऋतुका आगमन हुआ। वनमें वृक्ष सुन्दर कुसुम और नवीन पल्लवयुक्त हो उठे। ठौर २ भ्रमरोंकी गुञ्ज और कोकिलोंकी कूक मनको हरने लगी। सूर्य मलय पर्वत छोड़कर उत्तराभिमुख हुए। दिशाएँ उज्वल हो उठीं। दिनकी मलिनता जाती रही। भौंरे मधुपानकी आशासे कमलपूर्ण सरोवरोंकी ओर दौड़े। हंस कारण्डव, आदि पक्षिगण पङ्कजवनमें कलरव करते हुए केलि करने लगे। अशोकके वृक्ष पत्र पुष्पोंसे युक्त होकर अतिशय शोभायमान हो उठे। मधुकर वृन्द मधुगन्धसे अन्ध होकर गुण गुण शब्द करते हुए अशोक, चंपक, पलाश, कुरवक, बकुल आदि वृक्षों-

पर झूमने लगे। वनमें कनेरके वृक्ष फूल उठे। रात दिन क्षीण होने लगी। आमोंपर बैठी कोकिल अपनी मधुर कूकसे सबके हृदयको विचलित करने लगी। रात्रिमें चन्द्रमा अपना उज्ज्वल प्रकाश फैलाकर सबको मुग्ध करने लगा। तिल पुष्पोंको भौंरे चुम्बन कर उसकी शोभा बढ़ाने लगे। चमेली प्रफुल्ल होकर खिलने लगी। बौरे हुए आम्र-वनोंकी सुगन्धिसे दशों दिशायें आमोदित होने लगीं।

ऐसे समयमें दशरथ राजा आखेटके लिए वनको गये। आखेटकसे चलते हुए पशुओं पर लक्ष लगाना आता है तथा विविध पशुओंके क्रोध और भयसूचक चिह्नोंका ज्ञान भी होता है। फिर दौड़ धूपसे शरीर निरोगी और मजबूत होता है। इससे साथमें नौकर चाकर और कुत्ते आदि लेकर वे वनको गए। वनमें छिपे हुए चोर लुटेरोंको निकालकर तथा दावानलको शान्तकर उनके नौकरोंने पहलेहीसे वनको निरुपद्रव कर दिया था। राजाने मृग, वराह, सिंह, व्याघ्र, वनभैंसे, गैंडे चमरमृग आदि बहुतसे वन पशुओंका शिकार किया। इस प्रकार दशरथ राजा रोज शिकार खेलनेको जाया करते थे उनको अब तो विना शिकारको गये कल न पड़ती थी। वे वनमें रात होने पर वहीं शयन करते थे और कष्ट पाने पर भी मृगयाके लोभसे उसे सुख समझते थे।

एक बार दशरथ राजा प्रातःक्रिया समाप्त कर घोड़े पर सवार हो मृगकी खोजमें महानदी तमसाके तीर पर पहुँचे । दैवविधानसे एक ऋषि–कुमार जल लेनेके लिए तमसा नदीको आया हुआ था । वेतकी लताओंकी ओटमें वह अपने घड़ेमें जलभर रहा था । जल भरते समय घड़ेके शब्दको दशरथ राजा सुनकर विचार करने लगे कि कोई वनगज शब्द कर रहाहै । वनगजोंका मारना राजाओंको उचित नहीं है । इस वातको राजा दशरथ भूल गये एक ओर "शब्दानुपाती" वाण उस स्थान पर छोड़ा जहाँसे कि वह शब्द आया हुआ था । वाण शब्दके पीछे जाकर मुनि कुमारके हृदयमें लगा । ऋषिकुमार "हा तात ! ! हा मात ! !" कहकर चिल्ला उठा । राजा यह सुन घबराकर इधर उधर देखने लगे । क्या देखतेहैं कि वेतलताओंकी ओटमें एक ऋषि–कुमार जो जल भर रहा था उसीके हृदय पर उनका वाण जा लगाहै । राजाके दुःखकी सीमा न रही । वे बड़ी शीघ्रतासे घोड़े परसे उतर पड़े और मुनिपुत्रसे कहने लगे कि महाशय आप कौनहैं और किस वंशमें जन्म धारण किया है ? ऋषि–कुमार वाणके आघातसे मूर्छित पड़ा था तथापि अर्द्धोच्चारित गद्गद स्वरसे कहने लगा; महाराज ! आप भय न करें । ब्रह्महत्याकी शङ्काको छोड़िए । मैं ब्राह्मण पुत्र नहीं हूं । मेरा जन्म सामान्य वैश्य कुलमें हुआहै ।

थोड़ी दूर पर हमारा आश्रम है। वहां हमारे अन्ध माता-पिता रहते हैं। अब विलम्बका काम नहीं है। आप मुझे वहां शीघ्र ले चलिये।

मुनिपुत्रके कथनानुसार राजा उसे उसके आश्रममें लेगये और उसके अन्ध पिता मातासे बोलेः—महाशय! मैं सूर्यवंशीय राजा दशरथ हूँ। मृगयाके हेतु मैं आपके आश्रमकी ओर आया था। वनगजके भ्रमसे मैंने आपके पुत्रको वाण मारकर घोर पाप कर दिया है। यह सुन कर अन्ध माता पिता हा! हा! कहकर विलाप करने लगे। फिर उन्होंने राजाको पुत्रके वक्षस्थलसे वाण निकाल लेनेकी आज्ञा दी। वाण निकालते ही मुनि पुत्रकी आखें मुँद गई और प्राणपखेरू शरीर–पिंजरसे उड़ गया।

वह लड़का उन अन्ध माता पिताकी आंख था; अन्धेकी लकड़ी थी। उसकी मृत्युसे उन्हें जो दुःख हुआ सो पुत्रशोकसे पीड़ित जन जान सकतेहैं। शोकसे अधीर होकर अन्ध ऋषिने राजाको शाप दिया कि "जैसे आपने हमें इस वृद्धावस्थामें महानदुःख दिया वैसे ही आपको भी वृद्धावस्थामें पुत्र शोकसे शरीर त्यागना पड़ेगा।" इस प्रकार ऋषिको क्रोधित देखकर राजा दशरथ विनयपूर्वक बोले महाराज! आपने जो शाप दिया है उसे हम ग्रहण करतेहैं। आपका शाप हमें हितकर हुआ है।

हम पर आपने बड़ी कृपा की है। इस अपुत्रिकको पुत्रमुख देखकर अपार आनन्दित होनेका सौभाग्य अबतक प्राप्त नहीं हुआहै। अब आपकी कृपासे पुत्रमुख दर्शनका सुख प्राप्त होगा। हम हाथ जोड़कर विनय करतेहैं कि जो हुआ सो तो होगया अब हमें क्या आज्ञा होतीहै। अन्ध ऋषि बोले राजा आप हमारे लिए एक चिता तैयार करिए। धधकती हुई आगमें हम पति पत्नी पुत्रके सहित शरीर त्याग करेंगे! हमसे पुत्रशोक सहा नहीं जाता ऋषि की ऐसी आज्ञा पाकर राजाने अपने सेवकोंके द्वारा चिता बनवा दी। अन्ध ऋषिने पुत्र पत्नी सहित चितामें अपना शरीर त्यागन किया। और राजा अपने किए हुए कर्मपर पश्चात्ताप और शोक करते अयोध्याको लौट आए।

इति रघुवंशसार पूर्वार्ध समाप्त।

उत्तरार्ध ।

सर्ग १०

राजा दशरथका पुत्रलाभार्थ शृङ्गीऋषिके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराना । दुराचारी रावणके अत्याचारसे पीड़ित होकर देवताओंका विष्णुके निकट जाकर रावणके मारनेके लिये प्रार्थना करना । विष्णु भगवान्का देवताओंको धैर्य धराना मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नका जन्म ।

राजा दशरथ इन्द्रके समान महाप्रतापी थे वे बड़े न्याय नीतिके साथ प्रजाओंको पालन किया करते थे । उनके शासनसे प्रजा बहुत सन्तुष्ट और सुखपूर्ण थी । राज करते २ क्रमशः प्रायः अयुत वर्ष अर्थात दश हजार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु राजाके कोई पुत्र-सन्तान न हुआ । राजा इसके लिए बहुत चिन्तित हुए फिर ऋषि शृंगादि ऋत्विजोंको विनय पूर्वक आमन्त्रित कर राजाने यथाविधि पुत्रेष्टि यज्ञका आरम्भ किया ।

लङ्काका राजा रावण बड़ा अन्यायी और दुराचारी था देवतागण उसके अत्याचार व पापकर्मसे पीड़ित और दुःखित होकर किं कर्तव्य विमूढ़ होरहे थे । इधर सब

देवता मिलकर क्षीरोदशायी भगवान् नारायणकी शरणमें जाकर उपस्थित हुए। उधर अन्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा भी भंग हुई। विष्णु भगवान् अनन्त शय्यापर शयन कर रहेहैं। हजारों फणोंकी मणियोंके किरण समूहसे उनका घनश्याम शरीर प्रकाशमान हो रहा है लक्ष्मी कमलासन पर बैठी अपनी गोदमें उनके कमल चरणों-को धारणकर पादसेवामें मग्न है। विष्णु भगवान पीताम्बर धारण. किएहुए हैं और उनके वक्षस्थलमें कान्तिमान कौस्तुभ मणि सुशोभित है।

भूतभावन नारायणने योगनिद्राके अन्तमें देवताओंकी ओर दृष्टिपात किया ईश्वरकी इस कृपासे देवगण अपनेको धन्य समझ कर बड़े विनीत भावसें भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे कि, हे भगवन् ! आप इस अखिल संसारके कर्ता धर्ता और हर्ता हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब आपके एक एक अंशमात्र हैं। आप निर्विकार और निर्गुण होकर भी साकार और सगुण हैं। सत्व, रज, तम आदि गुणत्रयके अवस्थानुसार आप भिन्न २ रूप धारण करतेहैं तथापि आप सच्चिदानन्द स्वरूप एकरसरूप हैं। आपका पार कोई नहीं पा सकता। आप निस्पृह अजेय, सर्व घटघटवासी, सनातन सर्वज्ञ विश्वव्यापी जन्म जरा मरणादि रहित अचिन्त्य आदि पुरुष हैं। आप ही इस अखण्ड ब्रह्माण्डके आदिकारण हैं।

आपकी अपार महिमा अवर्णनीय है । आपकी महिमाका वर्णन कौन कर सकताहै ? कोई जीवनभर आपका गुणगान करता रहे पर आपकी गुणराशिका पार नहीं पा सकता । लोग जब आपका गुण गान करते २ थक जातेहैं तो हार खाकर बैठ जातेहैं । वेदोंने 'नेति नेति' कह आपकी अनन्त महिमाका बखान कियाहै । इस प्रकार अनेक स्तुति द्वारा देवताओंने विष्णु भगवान्‌को प्रसन्न किया । भगवान् आनन्दित होकर देवताओंसे उनकी कुशल वार्ता पूछने लगे । देवतागण दुःखके साथ बोले कि, महाराज ! दुराचारी दुष्ट रावणके अत्याचारसे हम सब आकण्ठ प्राण हो रहेहैं । आप हमारी रक्षा कर । हम आपकी शरणमें आये हुएहैं । आपके बिना हमारा कोई रक्षक नहीं है इस घोर दुःखसे हमें आप उद्धार कीजिए । यह कह देवतागण भगवान्‌के सम्मुख अपने अपने दुःख रोने लगे ।

देवताओंको भयभीत और दुःखसे व्याकुल देखकर भगवान् बड़े दुःखित हुए । फिर उनको धैर्य धराकर बोले कि, हे देवतागण ! तुम लोग अब सब भयको त्याग दो । अब तुम्हारे दुःख शीघ्र दूर होंगे । प्रजापति ब्रह्माके बरदानके प्रभावसे रावणने बहुत अत्याचार किया । अब उसका अत्याचार मुझे सह्य नहीं है । मैं अति शीघ्र सूर्यवंशीय राजा दशरथके यहां जन्म ग्रहण करूँगा और दुराचारी

दशाननको मार कर तुम सबको निर्भय करूँगा । अब तुम लोग भय छोड़ अपने २ धामको लौट जाओ । तुम्हारे सब दुःख अविलम्ब नष्ट होंगे। भगवान्‌का यह वचनामृत श्रवण कर देवगण अतीव सन्तुष्ट और सुखी हुए और अपने २ घर गए। इन्द्र आदि देवतागण रावणके भयसे बड़े चिन्तित थे। वे भगवान्‌की ऐसी बात सुनकर आनन्दसे नाच उठे और मर्त्यलोकमें अपने २ अंश प्रेरण कर वानरोंके रूपमें अवतीर्ण हुए।

इधर राजा दशरथका पुत्रेष्टि यज्ञ पूरा हुआ। पूर्णाहुतिके पहले होमाग्निसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। उस दिव्य पुरुषके हाथमें स्वर्णपात्रमें पवित्र चरु था। दिव्य पुरुषने राजाकी स्तुति वर्णन कर कहा कि, इस चरुके सेवनसे रानियोंके गर्भ सञ्चार होगा राजा दशरथने उस देवदत्त चरुको दो भागोंमें विभक्त किया और १ भाग रानी कौशल्या एवं एक भाग प्रियतमा कैकयीको दिया। दोनों रानियोंने प्रिय पतिका मनोरथ समझ लिया। पर उन्होंने सुमित्राको विना दिए चरु सेवन करना उचित न समझा अर्थात् अपने २ अंशसे आधा २ भाग सुमित्राको दिया । इस प्रकार चरुको बांट कर तीनोंने उसे भक्षण किया।

कुछ दिनके पीछे तीनों रानियोंमें गर्भके लक्षण देख पड़े। वे लोग क्रम क्रम पाण्डुवर्ण होने लगीं। एक नारायण चार

अंशोंमें उन तीनों रानियोंके गर्भमें आविर्भूत हुए । रानियाँ रात्रिमें शुभ स्वप्न देखा करतीं। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज सर्वाकृति दिव्य पुरुषगण उनकी रक्षा कर रहेहैं। गरुड़ पक्षी अपनी पीठपर उन्हें लेकर आकाशमें उड़ रहाहै। कौस्तुभ मणिधारिणी लक्ष्मी हाथमें कमलका फूल लिए उनकी सेवा कर रहीहैं । तथा सप्तर्षिगण गङ्गामें स्नान करके वेद गानपूर्वक उनकी स्तुति कर रहेहैं । राजा अपनी रानियोंके मुखसे स्वप्नवार्ता श्रवण कर परमानन्दित होते थे तथा जगत पिताका पिता होनेपर अपनेको धन्य समझते थे ।

पूर्ण दश महीनेमें राजमहिषी कौशल्याके गर्भसे एक पुत्र सन्तान जात हुआ। उस नवजात कुमारकी शोभासे सूतिकागार उज्ज्वल हो उठा। राजाने पुत्रका रमणीय रूप देख कर उन्हे "राम" के नामसे विभूषित किया । इसके पीछे कैकेयीके गर्भसे 'भरत' नामका पुत्र रत्न जात हुआ। फिर छोटी रानी सुमित्राके गर्भसे लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामके दो यमज पुत्ररत्न उत्पन्न हुए।

इधर रामचन्द्रजी उत्पन्न हुए उधर दशाननके मुकुटसे एक रत्नने गिर कर उसे मानों सूचित किया कि, अब तुम्हारी मृत्यु निकट आगई है।

चारों भाई स्वभावहीसे बड़े नम्र और शीलवान् थे। विद्या और सङ्गतिके द्वारा उनका विनयभाव और भी बढ़गया।

वे आपसमें बड़े प्रेमसे रहा करते थे। वे आपसमें कभी लड़ते झगड़ते न थे; न उनमें दुर्भाव था। तथापि राम लक्ष्मणको और भरत शत्रुघ्नको जीसे चाहते थे। राजा दशरथ वृद्धावस्थामें ऐसे रूपवान एवम् गुणनिधान पुत्रचतुष्टयके पिता होकर बड़े सुखी हुए।

महर्षि विश्वामित्रका राजा दशरथसे राम लक्ष्मणको माँगकर यज्ञ रक्षाके निमित्त अपने आश्रममें ले जाना; मार्गमें ऋषिका राम लक्ष्मणको बला और अतिबला विद्या सिखाना रामद्वारा ताड़का राक्षसीका वध; आश्रममें पहुंच कर ऋषिका यज्ञ करना रामचन्द्र द्वारा सुबाहुका संहार और मारीचको सागर पार फेंकना; यज्ञ पूर्ण होनेके पीछे राजा जनकके निमन्त्रणमें ऋषिका राम लक्ष्मण सहित जनकपुर जाना; मार्गमें गौतम मुनिकी पत्नीका शाप मुक्त करना; जनकपुरमें धनुष यज्ञमें शिवजीके धनुषको तोड़कर रामका सीतासे विवाह; लक्ष्मणका उर्मिलासे; भरतका माण्डवीसे शत्रुघ्नका श्रुतिकीर्तिसे विवाह होना; राजा दशरथ सहित जनकपुरसे अयोध्या लौटते समय मार्गमें रामचन्द्रसे परशुरामका विवाद होना।

एक समय महर्षि विश्वामित्र अयोध्यामें आए और राजा दशरथसे बोले कि हे राजन्! असुरोंके अत्याचारसे हमलोग यज्ञ करही नहीं पाते। वे हमें यज्ञ करते देख

नानाविघ्न प्रकट कर हमें दुःख देते हैं। इससे हमारी प्रार्थना है कि, हमारी यज्ञ रक्षाके लिए आप हमें कुछ कालके लिए रामचन्द्रको दें।

उस समय रामचन्द्र अल्पवयस्क थे और फिर चौथेपनमें राजाने उन्हें बड़े कष्टसे प्राप्त किया था। तथापि राजा दशरथ विश्वामित्रके अनुरोधको न टाल सके और प्राणतुल्य प्रियपुत्र रामचन्द्रको ऋषिके साथ जानेकी आज्ञा दी। तथा लक्ष्मणको भी रामचन्द्रके साथ उन्होंने जानेको कहा।

राम लक्ष्मण अपने पिताको प्रणामकर ऋषिके साथ चले। राजा दशरथ अपने प्यारे पुत्रोंको ऋषिके साथ जाते देखकर बहुत ही व्याकुल हुए। उनकी आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगी। फिर राम लक्ष्मण अपनी माताओंके पास गए। वहां उनके चरणोंमें प्रणाम कर वे अयोध्यासे बिदा हुए।

राजा दशरथने महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञाके बिना राम लक्ष्मणके साथ सैना भेजना उचित न समझा और ऋषिके प्रताप पर भरोसा रख अपने दोनों कुमारोंको उनकी सेवामें उपस्थित किया।

मार्गमें ऋषिने राम लक्ष्मणको बला और अतिबला नामक विद्या सिखाई। इस विद्याके जानने वालोंको भूख प्यास कुछ सता नहीं सकती। बला और अतिबला मन्त्रके प्रभावसे

दुर्गम वनमें भी राम लक्ष्मणको कुछ पथश्रम तथा ग्लानि न हुई। वे बड़े आनन्दसे मुनिके साथ वनकी शोभा देखते २ चले जारहे थे। मुनि नाना प्रकारकी कथा कहानी तथा इतिहास द्वारा उनका मनोरञ्जन कररहे थे। मार्गमें सरोवर सुरस जलदानसे, पक्षीगण मनोहर कलरवसे, वनवायु सुगन्ध पुष्परेणुसे तथा बादल सुशीतल छायादान द्वारा उनकी सेवामें तत्पर थे। खिलेहुए कमल पूर्ण जलको देखकर अथवा फल पुष्पोंसे शोभित वृक्षशाखा अवलोकन कर जिस प्रकार आनन्द प्राप्त होता है राम लक्ष्मणके मनोहर रूपको देख कर वनवासी ऋषिगण उससे भी अधिक प्रसन्न हुए। राम लक्ष्मण क्रम क्रम नीलकण्ठ महादेवके कोपसे भस्म हुए कामदेवके आश्रम पर पहुंचे। शरासन युक्त उन मनमोहन राजकुमारोंको देख कर यही ज्ञात होता था कि, मानों हर कोपाग्नि दग्ध कन्दर्प पुनर्वार प्रकट हुआ।

फिर राम लक्ष्मण उस स्थानपर पहुंचे जहां ताड़का राक्षसी रहा करती थी। विश्वामित्रने राजकुमारोंसे कहा कि, यह राक्षसी सुकेतु नाम यक्षकी कन्या है। इसकी शापकी कथा यों है कि, सुकेतुके तपसे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे वरदान दिया कि, एक हजार हाथियोंके समान बलवाली तेरी कन्या होगी। कन्या होनेपर सुकेतुने उसका विवाह जम्भके पुत्र सुन्दसे किया। कुछ कालके

अनन्तर सुन्दका मारीच नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ सुन्दने एक समय अगस्त्य ऋषिकी अवज्ञा की। अतः ऋषिने उसे नष्ट कर दिया। पतिनाश श्रवण कर ताडका अपने पुत्र मारीचको साथमें ले अपने वैरी अगस्त्य ऋषिको खानेके लिये विकराल रूप किए दौड़ी। उसको अपनी ओर आते देख ऋषिने उन दोनोंको शाप दिया कि, तुम मनुष्यभक्षी राक्षस हो जाओ। तबसे यह ताड़का और इसका पुत्र वनवासी ऋषियोंको नाना प्रकार कष्ट दे रहे हैं।

यह सुनकर रामचन्द्रने अपने धनुषको चढ़ाया। धनुष चढ़ानेका शब्द सुनकर ताड़का विकराल रूप किए बड़े वेगसे उस ओर दौड़ी। उसका शरीर पर्वतके समान काला था और दोनों कानोंमें कुण्डलकी नाईं मनुष्योंकी दो सफेद खोपड़ी लटक रही थीं। भयङ्कर आकृति किए भूतप्रेतोंका वस्त्र पहने अंतड़ियोंकी करधनी कमरमें लटकाए ताल वृक्षके समान एक भुजा उठाए, पेड़ोंको तोड़ती उखाड़ती धूल और पत्ते उड़ाती वह तूफानकी नाईं रामचन्द्र पर पहुँची। उसे देखकर घृणा आती थी। रामचन्द्रने उसके हृदयपर एक तीक्ष्ण बाण मारा। उससे उसकी छाती छिद गई और वह अचेत हो पृथ्वीपर आ गिरी। उसकी देहसे दुर्गन्ध लोहूकी धारा बहने लगी। और कुछ कालमें वह मरगई।

रामकी इस वीरतापर विश्वामित्र बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें एक राक्षसघ्न अस्त्र प्रदान किया। फिर वहाँसे चलकर

वे "वामनके" आश्रम पर पहुँचे और थोड़ी देरमें विश्वामित्र के आश्रममें जा उपस्थित हुए। महर्षि विश्वामित्र राम लक्ष्मणको यज्ञ रक्षाके लिये नियुक्त कर महायज्ञ करने लगे। यज्ञ आरम्भ हुआ और उधर आकाशमें राक्षसगण जा डटे और यज्ञवेदीमें रुधिर बरसाने लगे। मुनि और ऋत्विजोंको इससे बड़ा दुःख और भय हुआ। परन्तु रामचन्द्रने उनके भयको शीघ्र ही दूर कर दिया। वह आकाशकी ओर आँख उठाकर देखने लगे। उन्होंने देखा कि, राक्षसगण वहाँ ससैन्य भ्रमण कर रहे हैं। उनके दो नायक हैं। सुबाहु और ताडकाका पुत्र मारीच। इन दोनोंको रामचन्द्रने अपने बाण-का निशाना बनाया। सुबाहुको तो उन्होंने खण्ड २ करके आश्रमके बाहर फेंक दिया और मारीचको भूमिपर गिरा दिया। इस प्रकार दोनों भाइयोंकी रखवालीसे यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ मुनि और ऋत्विजगण दोनों राजकुमारों पर बहुत प्रसन्न हुए।

इसी समय राजा जनकका भेजा हुआ निमन्त्रण पत्र महर्षि विश्वामित्रके पास आया। राजा जनक धनुषयज्ञ कर रहे थे। ऋषिके द्वारा राजा जनककी प्रतिज्ञा और शिवजीके धनुषका वृत्तान्त सुनकर राम लक्ष्मण बड़े ही उत्सुक हुए। फिर ऋषि उन दोनों भाइयोंको लेकर जनक-पुरकी यात्रामें चले। मार्गमें सन्ध्या हो गई। यह देख ऋषि

राजकुमारों सहित गौतम मुनिके आश्रममें ठहर गए और वहीं वृक्षके नीचे रात्रि बितायी। यहाँ गौतम मुनिकी स्त्री अहल्या पतिशापसे पत्थर होकर वास करती थी। रामचन्द्रजीकी चरणरेणुके स्पर्शसे वह फिर अपने पूर्व शरीरको प्राप्त हुई। इस प्रकार अहल्याको शापमुक्त कर दूसरे दिन रामचन्द्र मुनिके साथ जनकपुरमें पहुँचे। राजर्षि जनकने विश्वामित्रके शुभागमनसे अपनेको धन्य मानकर उनकी उचित पूजा की, तथा राम लक्ष्मणके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर उन्हें यथेष्ट सम्मान प्रदान किया। मिथिलावासी उभय राजकुमारोंकी सुन्दरतासे मोहित होगए।

राजा जनकका यज्ञकार्य समाप्त होनेपर विश्वामित्रने उनसे कहा कि, हे राजन् रामचन्द्र! आपकी प्रतिज्ञाको सुनकर शिवजीके धनुषको देखनेके लिए बड़े उत्सुक हो रहे हैं। यह सुन जनकके मनमें कई एक भाव उत्पन्न हुए। रामचन्द्रकी सुकुमारता और धनुषकी कर्कशता विचार कर वे बड़े दुःखित हुए। परन्तु ऋषिके अनुरोधसे उन्होंने धनुषको मँगाकर रामचन्द्रको दिखाया। उस कठोर व वजनदार धनुषको रामचन्द्रने फूलके समान सहजमें ही उठा लिया। और उसे ज्यों ही खींचा त्यों ही वह वज्रपातके समान शब्द करके दो टुकड़े होगया। तब तो उपस्थित सभाके सज्जनगण आश्चर्यसागरमें निमग्न होकर रामचन्द्रकी बड़ी प्रशंसा करने लगे।

जनक रामचन्द्रकी वीरता व पराक्रमको देख बड़े आनन्दित हुए और विश्वामित्रके आगे अग्नि साक्षी कर वाग्दान किया कि, सीता रामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हुईं। फिर उन्होंने अपने पुरोहितको अयोध्या भेजकर राजा दशरथको अपने यहाँ बुलवाया। राजा दशरथ अपने पुत्रके वीरोचित कर्मसे बहुत सन्तुष्ट हुए। और जितनी जल्दी उनसे होसकी उतनी जल्दी सब साजबाजके साथ सेना सहित जनकपुर पहुँचे।

फिर जनकपुरमें बड़े समारोहके साथ रामचन्द्रका सीतासे लक्ष्मणका जनकराजाकी द्वितीय कन्या उर्मिलासे, तथा भरत और शत्रुघ्नका जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या माण्डवी और श्रुतिकीर्तिसे विवाह हुआ। क्या रूपमें, क्या गुणमें, क्या कुलमें, क्या शीलमें वर कन्या एक समान थीं

राजा दशरथ अपने चारों पुत्रोंका विवाहकार्य समाप्त कर यथासम्भव वर वधू सहित अपनी राजधानीके लिए रवाना हुए। राजा जनक तीन दिनतक उनके साथ रहकर मिथिलाको लौट गए।

मार्गमें एक दिन सहसा आँधी जोरशोरसे चलने लगी। आकाशमें धूल छागई। पक्षीगण कोलाहल करने लगे स्यार अशुभ सूचक शब्द करने लगे। इसको अशकुन समझ कर राजा दशरथ घबराउठे। कुछ समयके पीछे आँखोंका चकाचौंध

करनेवाला एक प्रकाशवान् दिव्य पुरुष सामने आया। उसके कन्धेपर जनेऊ, हाथमें धनुषबाण और दाहिने कानमें २१ दानेकी रुद्राक्षमाला लटक रही थी। यह कौन थे जानते हैं ? वह महाक्रोधी वही परशुराम थे जिन्होंने अपने पिता जमदग्निकी आज्ञासे अपनी माता रेणुकाको मारडाला था और फिर उसे जिलाया था। वह वही क्षत्रिय जातिके परम शत्रु परशुराम थे जिन्होंने अपने पिताके शत्रु सहस्रार्जुनके पुत्रोंको मारकर क्षत्रियोंको इक्कीस बार समरक्षेत्रमें सुलाकर पृथ्वीको निःक्षत्रिया करदिया था। अपनी जातिके शत्रुको देखकर दशरथ बहुत ही डरगए क्योंकि, उनके साथ उनके सुकुमार पुत्रगण थे और वे स्वयं वृद्ध होगए थे।

महावीर परशुराम रामचन्द्रके पास जाकर बड़े क्रोधसे बोले कि, क्षत्रिय जाति मेरा परम शत्रु है। मेरे पिताका नाशकर्ता क्षत्रिय ही था। मैंने पृथ्वीको क्षत्रिय शून्य करदिया था। अब तुम और कार्त्तवीर्य मेरे दो बडे शत्रु फिर उत्पन्न हुए हो। तुम मेरी विश्वव्यापिनी कीर्तिको लोप कर रहे हो। शिवजीके जीर्ण धनुषको तोड़कर तुम अपनेको महाबली समझते हो। तुम अभी मेरा पराक्रम नहीं जानते। तुम बालक हो। तुमसे हम लड़ना नहीं चाहते। तुम मेरे इस धनुषको चढ़ाओ और उसपर बाण सन्धानो। यदि यह काम तुमसे हो गया तो समझो मैं तुमसे हार गया नहीं तो

तुमको मेरे निकट पराजय स्वीकार करना होगा। अथवा मेरे इस भीषण फरसेकी कठोर धारको देखकर जब तुम्हें भय होता है तो हाथ जोड़कर मुझसे प्राणभिक्षा माँगो। मैं तुम्हें अभय करदूंगा। यह कह परशुराम चुप होरहे। रामचन्द्रने कुछ उत्तर न देकर उनसे उनका धनुष ले लिया और उसमें चिल्ला भी चढ़ादिया और एक तेज बाण धनुमें सन्धाना। परशुराम यह देखकर फीके पड़गए। उन्हें बड़ी लज्जा हुई। तब रामचन्द्रजीने उनसे कहाः-आपने हमारा बड़ा तिरस्कार किया। परन्तु आप ब्राह्मण होते हैं। इससे हम इस बाणको आपपर न छोड़ेंगे। इस बाणको हम स्वर्गकी ओर छोडते हैं। यह आपका स्वर्गद्वार बन्द कर देगा आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा। इस प्रकार रामचन्द्रजीसे पराजित हो परशुराम अपने अपराधके लिए उनसे क्षमा माँगने लगे। रामचन्द्रने भी नम्रतापूर्वक मुनिसे क्षमा मांगते उनके चरण ग्रहण किये। परशुरामने रामजीको आशीर्वाद किया और अपना रास्ता लिया।

राजा दशरथ अपने पुत्रके पराक्रमसे बहुत ही आनन्दित हुए। उन्होंने रामचन्द्रको छातीसे लगा लिया। सबलोग मारे खुशीके फूल उठे। फिर कुछ दिनमें वधू समेत आनन्दपूर्वक राजा दशरथ अपनी राजधानी अयोध्यामें जा पहुँचे। अयोध्यानगरी मारे आनन्दके फूल उठी। पुत्रवधू प्राप्तिसे

रानियोंको जो सुख हुआ सो लिखनेसे बाहर है । राजा दशरथ अपने चारों पुत्रोंके सहित बड़े आनन्दसे कालाति-पात करने लगे ।

बारहवाँ सर्ग १२.

राजा दशरथका रामचन्द्रको युवराज करनेका विचार और उसकी तैयारी; कैकेयीका वरदान माँगना; राम सीता लक्ष्मणका वन गमन; राजादशरथकी मृत्यु; भरत शत्रुघ्नको मामाके घरसे अयोध्या आना; भरतजीका रामचन्द्रको लौटा-नेके लिए चित्रकूट जाना; पादुका देकर रामचन्द्रका भरत-को लौटाना; भरतका नन्दीग्राममें तप करना; रामचन्द्रजीका पञ्चवटीमें निवास; सीताहरण; सुग्रीवसे रामचंद्रजीकी मित्रता; वालिवध; हनुमानजीका समुद्र पारकर लङ्का जाना और सीताका खोज करना फिर लङ्काको जलाना; वानरोंकी सेना सहित सेतु बांधना; विभीषणसे मित्रता; मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण वध; विभीषणको राज्य देना; सीताकी अग्निपरीक्षा; और लक्ष्मण तथा सीता सहित रामजीका अयोध्याको लौट आना ।

क्रमशः राजा दशरथका चौथापन आ उपस्थित हुआ केश सफेद हो गये।दांत गिरने लगे । और शरीरका मांस ढीला पड़कर सिकुड़ने लगा। यह देख राजा दशरथने मनमें सोचा कि, अब वृद्धावस्था आ पहुँची और रामचन्द्र भी सब भाँति राज्य सँभा-

लनेके योग्य हो गए । रामचन्द्रको यौवराज्य देकर हमें अब वनगमन करना चाहिए राजाका यह विचार सुनकर प्रजागण बड़े खुश हुए।बड़ी जल्दीसे अभिषेककी सब तैयारी होने लगीं।

इस बीचमें कुब्जाके सिखाने पर कैकयीने राजासे दो बरदान माँग लिये एक बरदानसे रामचन्द्रको चौदह वर्षके लिए वनवास और दूसरेसे भरतका अयोध्यामें राजा होना । अब वचनबद्ध होकर राजा बड़ी कठिनाईमें पड़गए । उन्हें तो 'भइ गति साँप छछूँदर केरी । उगलत लीलत पीर घनेरी॥' की सी दशा हुई । न तो प्राणाधिक पुत्रको वन भेजसकते, न सत्यको छोड़ सकते ।

राजाने कैकेयीको अनेक प्रकारसे समझाया पर उसने एक न सुनी । तब विवश होकर राजाने सत्यरक्षाके लिए रामचन्द्रको बन जानेकी आज्ञा बडे दुःखके साथ दी । रामचन्द्रजी अपने पिताके बड़े ही आज्ञाकारी पुत्र थे । वे पिताकी आज्ञासे जरा भी दुःखित या उदास न हुए और साथमें सीता तथा वीर लक्ष्मणको लेकर वल्कल वस्त्र पहने वह वनको चलेगए । क्यों न जाते; वन जाना कौन बड़ी बात थी । पिताके लिए वह प्राणतक सहर्ष दे सकते थे ।

उधर तो रामचन्द्रजी वनको गए और इधर उनके वियोगसे राजा दशरथ मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपड़े । फिर चेतना पाकर वह "हा ! राम हा राम" कहते विलाप करने लगे फिर यह कह कर- कि,–

हा ! रघुनन्दन प्राण पिरीते।
तुम बिन जियत बहुत दिन बीते।

उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये । अयोग्य पुत्र पर भी पिताका अगाध प्रेम होता है । उसे क्षणभर भी न देख पिताका कलेजा दहल उठता है तो क्या राम जैसे पितृ-भक्त और गुणी पुत्रके वियोगसे दशरथ जैसे प्रेमी पिता शरीर धारण कर सकते थे ? कदापि नहीं।

राम लक्ष्मण तो वनको गए ही थे पर भरत और शत्रुघ्न भी घरपर न थे। वे अपने मामाके यहाँ थे । ऐसे समयमें राजाका परलोक वास बड़ा अनिष्टकारी हुआ । लोभी राजागण अयोध्याको अनाथ देखकर उसपर चढ़ाई करनेका विचार करने लगे । फिर अनाथा प्रजाने भरत शत्रुघ्नको उनके मातामहके यहांसे शीघ्र बुलवाया। भरत घर आए पर घर तो भयङ्कर वनसे भी अधिक भयावन हो रहा था। उनके मनमें कई एक दिनसे अनिष्टशंका और भय ज्ञात होकर विलीन हो रहा था । पिताकी मृत्यु और प्राणोपम पूज्य भाई रामचन्द्रका वनगमन श्रवण कर वह "हा ! हतोस्मि" कहकर भूमिपर गिर पड़े। फिर उन्होंने कहा "पितु सुरपुर वन रघुकुल केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू" । और फूटफूट कर रोने लगे।

कैकेयी समझती थी कि, भरत मेरे इस कार्यसे बहुत सन्तुष्ट होगा। पर भरत अपनी मातापर बहुतही रुष्ट हुए।

और वह सैन्य सामन्त सहित रोते पीटते रामचन्द्रकी खोजमें बनको चले । क्रमशः नाना वन पर्वत नदी नाले नाँघकर वह चित्रकूटके निकटके महारण्यमें पहुँचे । वहां रामचन्द्रजी उन्हें मिले । भरतने रोते २ पिताकी मृत्युका हाल रामजीको सुनाया और उन्हें अयोध्या लौट चलने और राजभार ग्रहण करनेकी प्रार्थना की । पर रामचन्द्र न लौटे । आखिरमें भरतने रामचन्द्रसे उनकी पादुका (खड़ाऊं) माँगी । रामजीने खड़ाऊँ देके और सबको समझा बुझाकर विदा किया । भरत चित्रकूटसे लौटे पर वह फिर रामशून्य अयोध्याको न गए । और जटा वल्कल धारण कर नन्दिग्राममें तप करने लगे । रामचन्द्रकी खड़ाऊँकी जोड़ीको राज प्रतिनिधि समझ कर और उसे सिंहासन पर स्थापन कर शत्रुघ्न नीतिके साथ प्रजापालन करने लगे । भरतको राज्यका लोभ न बहका सका । वह सब विषय वासना त्याग कर तप करनेमें लगे । तप करने क्या लगे अपनी माता कैकयीके महापापका प्रायश्चित्त करने लगे ।

रामचन्द्रजी लक्ष्मण तथा सीता सहित वनमें सुखपूर्वक रहने लगे । एक दिन रामजी जानकीकी गोदमें सो गए । ठीक उसी समय इन्द्रके पुत्र जयंत नामक कागपक्षीने जानकीजीके स्तनोंपर नख मारा । जानकीजीके जगानेपर रामजीने उस दुष्टकी एक आंख बाणद्वारा फोड़ दी ।

चित्रकूट अयोध्यासे बहुत दूर न था। अतः रामने विचारा कि, कहीं भरत फिर भी यहां न आवें। इससे वह वहांसे चल पड़े और वनवासी ऋषियोंसे मिलते जुलते क्रमशः दक्षिणकी ओर जाने लगे। फिर अत्रि मुनिके आश्रमपर पहुँचे। अत्रि मुनिकी पत्नी अनसूयाने सीताजीको एक सुगन्धित अङ्गराग प्रदान किया था। फिर रामजी वहांसे आगे बढ़े। मार्गमें विराध नामक राक्षसने राम लक्ष्मणके मध्यसे सीताको हरण करलिया। रामचन्द्रने उसे बाणोंसे मारकर भूमिमें गाड़ दिया। क्योंकि, न गाड़नेसे उसकी अपवित्र गन्धसे आश्रम प्रदेश दूषित होता। फिर रामजी लक्ष्मण और सीता सहित आगे बढ़कर अगस्त्य मुनिकी सम्मतिसे पञ्चवटीमें रहने लगे।

एक समय रावणकी बहिन सूर्पणखा काम पीड़ित हो रामजीके पास आई। लज्जाभय छोड़कर उसने अपना परिचय दिया और सीताजीके आगे रामजीसे प्रार्थना की कि, तुम मुझसे सम्भोग करो। रामजी बोले कि, हे कामिनी! तू देखती है मैं सपत्नीक हूँ। तू मेरे छोटे भाईके पास जा। थोड़ी दूरपर यती लक्ष्मणकी कुटी थी। सूर्पणखा वहां गई। लक्ष्मण बोले कि, बड़ेभाईके पास तू गई थी। तू तो मेरी माता है। मैं तुझे स्वीकार नहीं करसकता। इससे वह फिर रामजीके पास गई। उसे देख जानकीजीकी

हँसी न रुकी । जानकीजीको हँसते देखकर वह अपना विकराल रूप धारणकर गर्जने लगी । सीता डर गईं । लक्ष्मण जानगए कि, यह मायाविनी राक्षसी है । और शीघ्र पर्णशालामें जा उसके कान और नाक काटली नाक कान काटनेपर वह तो और भी कुरूपा और भयानक होगई, लोहू लोहान हो वह रोती पीटती खर दूपणके पास गई और अपनी दशाका वृत्तान्त कह सुनाया दीप-ककी ओर पतङ्गकी नाईं खर दूषण त्रिशिरा आदि निशाचर असंख्य सेना ले रामजी पर आ चढ़े । यद्यपि रामचन्द्रजी एक थे और राक्षस करोड़ों तथापि रामचन्द्रके पैने २ तीरोंके आगे वे न ठहर सके । देखते ही देखते राम-जीने सबको मारकर भूमिपर सुला दिया । केवल सूर्पणखा बच रही वह रावणके पास लङ्काको दौड़ती गई और रोरो कर अपनी दशा और खर त्रिशिरादिकोंका ससैन्य मरण वृन्तान्त उससे कहा । रावण अपनी बहिनकी दुर्गति और खर त्रिशिरादिकोंका मरण सुनकर जल भुन गया । उसने मारीच नामक राक्षसको "मायामृग" बनाकर राम लक्ष्मण-के पास भेजा और उन्हें धोखेमें डालदिया । फिर आप खुद तपस्वीका वेश बनाकर पञ्चवटीसे सीताजीको राम लक्ष्मणकी गैरहाजरीमें चोरी करके ले गया । रास्तेमें उसे जटायु नामक गिद्धने रोका पर उसने उसके डैनें काट दिए ।

राम लक्ष्मण जब मायामृगको मारकर कुटीपर आए तो वहां सीताजी उन्हें न मिलीं तब तो वे बड़े ही दुःखित हुए और कुटीके आसपास उन्हें खोजने लगे । रामजी "सीता सीता" कह कर रोते हुए उन्हें बुलाने लगे । पर सीता तो वहां थी ही नहीं फिर उन्हें वह मिलती कहां ? माता पिता राज द्वार घर बार सब छोड़कर रामजी वनमें आये। वनमें तो भला सुखसे रहते । वहां भी दुर्दैवने इनका पीछा न छोड़ा। प्राणवल्लभा अर्धाङ्गिनी पत्नीको आज गहन कानन-में उन्होंने हरण करा डाला । फिर राम लक्ष्मण सीताको खोजते २ आगे बढ़े। कुछ दूर पर उन्होंने छिन्नपक्ष जटा-युको भूमिपर पड़ा हुआ देखा । जटायु रामजीके पिता राजा दशरथका मित्र था। राम लक्ष्मणको देखकर वह रो उठा और बोला कि, "वत्स, दुष्ट रावण सीताको चुराकर ले गया और उसने मेरी यह दशा की" यह कह जटायुने प्राण त्याग दिये । राम लक्ष्मण यह सुनकर बहुत ही कातर हुए और जटायुको देखकर उन्हें अपने पिताकी याद आगई। उनका पितृशोक उनके हृदय पर फिर उमड़ चला। फिर राम लक्ष्मणने यथाविधि अपने पिताके मित्र जटायुकी अग्नि-संस्कार आदि क्रिया की। अब सीताके शोकसे रामचन्द्र अधीर हो आहार निद्रा त्याग, रात दिन रो रो कर वन २ में फिरने लगे। उन्होंने वनमें कबन्ध, नामक शापभ्रष्ट राक्ष-

सको मारा। कवन्धने शापसे मुक्त हो रामजीको वन्दरोंका राजा सुग्रीवसे मित्रता करनेकी सलाह दी।

सुग्रीवके वड़े भाई वालिने सुग्रीवकी स्त्रीको छीनलिया था। रामजीकी प्राणप्रिया सीताको रावण हरकर लेगया था रामजी और सुग्रीव पर एकसा दुःख पड़ा था। वे दोनों एक ही प्रकारके दुःखसे दुःखी थे इससे उन दोनों-में दोस्ती होना वहुत ठीक था। रामजीने सुग्रीवसे दोस्ती करके उसके शत्रु वालिको मारा और सुग्रीवको वालिकी जगह पर वन्दरोंका महाराज वनादिया।

इसके वाद सुग्रीव की आज्ञासे वन्दरगण सीताकी खो-जमें चारों तरफ गए। सीताको खोजते २ एक दिन पवन-नन्दन हनुमानूजी जटायुके ज्येष्ठ भाई सम्पातीसे मिला। सम्पातीने उन्हें सीताजीका हाल वताया। तव हनुमान समु-द्रको लाँघकर लङ्काको गया। वहां वह सीताजीसे मिला और रामजीकी दी हुई अँगूठीको उन्हें दिया। पतिकी अँगूठी-को पा सीता कुछकालके लिए अपने दुःखको भूल गई। फिर उन्होंने अपनी चूड़ी हनुमानको देकर कहा कि, इसे मेरे पूज्य पतिको देदेना। हनुमान वहाँसे चलकर आगे वढ़ा और रावणके पुत्र अक्षयको मारडाला। तव मेघनादने हनु-मानूको अपने ब्रह्मास्त्र द्वारा वाँध लिया। जव हनुमान् छोड़ागया तव उसने लङ्कापुरीको जलाकर भस्म करदिया।

और समुद्रको लांघकर रामजीके पास जा हाजिर हुआ। सीताजीकी दीहुई चूड़ीको रामजीको देकर हनुमानने सीता-का सब हाल कह सुनाया। रामजी प्राणप्यारीकी खबर पाकर थोड़ी देरके लिए खुश हुए। और जितनी जल्दी हो-सकी उतनी जल्दी उन्होंने बन्दरोंकी सेना इकट्ठी कर लङ्का-के लिए कूच करदिया। कुछ दिनके बाद समुद्रके किनारे रामचन्द्रजी सेना समेत जा पहुँचे। उधर रावणने अपने भाई विभीषणको लङ्कासे निकाल दिया। विभीषण बड़ा साधुस्वभाव और रामभक्त था। वह रामजीके पास आया। रामजीने उसे बड़े प्रेम और आदरसे अपने पास रक्खा और उसे लङ्काका राजा बना देनेकी प्रतिज्ञा की। फिर समुद्र पर पुल बँधाकर रामजी सेना समेत समुद्रको उतरे और लङ्कापुरी पर जा चढ़े अब बन्दरों और राक्षसोंका घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओरके "राम रावणकी जय" शब्दसे आकाश गूँज उठा। बन्दरोंकी कठिन मारसे राक्षस व्याकुल हो उठे।

एक दिन रावणने झूठ मूठ रामजीका कटाहुआ सिर लेकर सीताको दिखाया। पतिगतप्राणा सीता पतिसिर देखकर बहुत शङ्कित और भीत हुई तथा प्राण त्यागनेको तैयार होगई। पर त्रिजटा नामकी राक्षसीने उनसे कहा कि, यह सब माया है। तुम इनकी माया पर विश्वास न करो। तब सीता कुछ शान्त हुई।

मेघनादके नागफाँसमें एक दिन राम लक्ष्मण बँध गए। तब गरुड़ने उन्हें बन्धनसे छुड़ाया।

लड़ाईमें एक बार दशाननने लक्ष्मणके हृदय पर शक्ति प्रहार किया। लक्ष्मण उस शक्तिकी मारसे मृतप्राय हो भूमि-पर गिर पड़े। लक्ष्मणकी मूर्च्छा देख रामचन्द्र बहुत ही व्या-कुल हुए। भ्रातृवत्सल राम भाईको गोदमें रखकर बड़े कातर-भावसे रोने लगे। पर हनुमान्‌जी उनके लिए एक महौषधि लाये। उसको सूँघतेही वे फिर मूर्च्छासे ज्योंके त्यों उठ खड़े हुए। फिर लक्ष्मणजीने महा बली मेघनादको मारकर इन्द्रको निःशङ्क किया। कुम्भकर्णको रावणने सोतेसे जगाकर युद्धके लिए भेजा पर वह रामजीके बाणोंसे समरभूमिमें फिर सो गया और महा निद्रामें लीन हो गया।

यह देख रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और बोला कि, यातो आज जगत् रामशून्य होगा या रावणशून्य, ऐसी प्रतिज्ञा कर वह युद्धको चला। रावण रथपर था और रामचन्द्रजी भूमिपर। यह देख इन्द्रने रामजीके लिए अपना रथ भेजदिया। रामजी रथपर चढ़कर रावणसे लड़ने लगे। दोनों बड़े बली योद्धा थे। अपने बल पराक्रमके अनुसार दोनोंमें खूब लड़ाई हुई। आखिरमें रावण रामके बाणोंका निशाना होकर मारा गया। रावणकी मृत्युसे देवता गण बहुत ही सन्तुष्ट हुए और रामजी पर फूल बरसाने लगे। रामजीने

इन्द्रका रथ उन्हें लौटा दिया। इन्द्रका सारथी रामजीकी विजय पताका उड़ाते स्वर्गको चला। फिर रामजीने सीताके सतीत्वकी अग्निद्वारा परीक्षा की और उन्हें शुद्धाचारिणी जानकर पुनर्वार ग्रहण किया।

रामजीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विभीषणको लङ्काके राज्य सिंहासन पर बैठाकर उसे राक्षसराज्यके शासनका भार सौंप दिया।

इस बीचमें चौदह वर्ष वनवासका काल बीत चुका। रामजी अब अयोध्या लौटनेके लिए उत्सुक हुए। और विभीषण सुग्रीव, तथा मुख्य २ वानरोंको सङ्गमें ले वे लक्ष्मण और सीता सहित पुष्पक रथपर सवार हो अयोध्याके लिए रवाना हुए।

तेरहवां सर्ग १३.

पुष्पक विमान पर चलतेहुए रामजीका सीताजीको सागर दिखाना और उसकी महिमा वर्णन करना, रामजीका जानकीको उन स्थानोंको दिखाना जहां वह उन्हें खोजते फिरे थे। फिर माल्यवान, पंपासर, पंचवटी, गोदावरी, अगस्त्याश्रम, शरभङ्गका आश्रम, चित्रकूट, गङ्गायमुनाका सङ्गम, निषादका गाँव तथा सरयूको क्रम २ दिखाते जाना और भरतजीको मिलने आते देख रामजीका स्वर्गसे पृथ्वीपर विमान उतारना।

पुष्पक नामका विमान आकाशमार्गमें वायु वेगसे उड़ने लगा । थोड़ी दूर जानेके पीछे रामजीने सीताजीसे कहा कि, प्रिये, यह देखो, इस विस्तीर्ण महार्णवकी कैसी मनोहर्षिणी शोभा है । शरदाकाशके तारामण्डलमें आकाशगङ्गाकी नांई इस समुद्रमें यह पुल कैसा शोभायमान दृष्टि पड़ता है ।

समुद्रको दो भागोंमें विभक्त करता हुआ मलय पर्वततक जो यह पुल दिखाई पड़ता है उसे मैंने ही बँधाया है । हमारे वंशमें सगर नामके एक बड़े नामी राजा थे । उनके सोलह हजार पुत्र थे । एक बार महाराज सगरने अश्वमेध यज्ञके लिये घोड़ा छोड़ा था । उसे देख इन्द्र बहुत शङ्कित हुए और उस घोड़ेको रसातलमें लेकर महातपी महर्षि कपिलके निकट बांध आए । सगरके बेटोंने तब घोड़ेकी खोजमें पृथ्वीको खोदकर पातालमें प्रवेश किया था । यह समुद्र उसी समय पृथ्वीके खोदनेसे परिवर्धित हुआ । इस समुद्रकी महिमा बहुत बड़ी है । सूर्यकी किरणें यहींसे जल खींचती हैं जिससे मेघोंकी वृष्टि होकर पृथ्वीपर जल वृष्टि होती है । यह मणि मुक्ता प्रवाल आदि नाना रत्नोंकी खान है । यह भीषण वड़वाग्निको धारण करता है । आनन्ददायक चन्द्रमा इसीसे उत्पन्न हुआ है । भगवान् भूतभावन नारायण प्रलयके अन्तमें इसके एक कोनेमें शयन करते योगनिद्रामें निमग्न होते हैं । जब सुरराज इन्द्रने वज्रास्त्र द्वारा पर्वतोंके पक्षोंका छेदन

किया तव मैनाक आदि सैकड़ों पर्वतोंने इसके जलमें छिपके आत्मरक्षा की थी। जब वाराहावतारमें पृथ्वी रसातलमें जा छिपी थी तब इसका जल पृथ्वीके आश्रय हुआ था। और इसमें हजारों नदी नाले आकर मिलते हैं। यह उनके जलको अपने उदरमें धारण करता है और उन्हें जलदान करता है।

प्रिये! वह देखो समुद्रमें कैसी वड़ी २ मछलियाँ उछल रही हैं। उन मगरोंको तो देखो वे जलपर कैसे दौड़ रहे हैं। वड़े २ अजगर साँप पानीमें तैरते हुए समुद्रकी लहरोंकी नाईं दृष्टि पड़ते हैं। उनके फणोंपर मणियोंकी कैसी अपूर्व शोभा है। वे पवन पीनेके हेतु बाहर आए हुए हैं। वहां देखो मूँगोंके ढेरमें शङ्खोंके समूह कैसे अच्छे ज्ञात हो रहे हैं। आहा! समुद्रमें कैसे वड़े २ भँवर पड़ रहे हैं। तमाल और ताली वृक्षोंसे सुशोभित समुद्रका किनारा कैसा सुन्दर मालूम हो रहा है। हे विशालाक्षि! समुद्र तीरका समीर केतकी पुष्पोंकी सुगन्ध लिए कैसे मन्द २ वह रहा है। यह देखो थोड़ी देर ही न हुई और हम समुद्रके इस पारमें आ पहुंचे। इस समुद्रके तीर देशकी कैसी आश्चर्यमयी शोभा है। कहीं तो रेतोंपर सीपसे निकले हुए मोती पड़े हुए हैं। कहीं सुपारीके पेड़ फलोंसे लदे नीचेको झुक रहे हैं। अब जरा पीछेकी ओर मुहँ फेरकर तो देखो। विमानके जल्दी चलने-से हम समुद्रसे कितनी दूर आगये। यह वनभूमि दूरवर्ती

समुद्रके उदरसे मानो निकलसी रही है । यह विमान मेरी इच्छानुसार चलता है । कभी देवपथमें, कभी मेघपथमें और कभी पक्षियोंके मार्गमें चलता है ।

तुम बादलको छूनेके लिए हाथ बढ़ा रही हो । बादल बिजली द्वारा तुम्हारे कोमल करकमलको अलङ्कृत कर रहा है अब देखो दण्डकारण्य दीख पड़ता है । वनवासी ऋषिगण राक्षसोंके भयसे अपने २ आश्रम त्याग कर भागगये थे । अब राक्षसोंके मारे जानेका हाल सुनकर वे फिर अपने पुराने आश्रमोंमें लौट आये हैं और नई कुटी बनाकर कैसे सुखसे निवास करते हैं

प्यारी ! जब दुरात्मा रावण तुम्हें पञ्चवटीसे हरकर ले गया तब तुम्हारी खोज करते २ इसी स्थानमें तुम्हारे चरणकमलका एक नूपुर मुझे मिला था । उस समय मेरा विलाप सुन क्या स्थावर क्या जङ्गम सब दुःखित हो उठे थे ।

लताएँ अपनी डालियोंको दक्षिणकी ओर झुका २ कर मुझे तुम्हारा मार्ग बताने लगीं । मृगोंने तृण चरना त्याग कर दक्षिण दिशाकी ओर मुहँ उठा मानो मुझे तुम्हारा मार्ग कह दिया ।

यह देखो माल्यवान् पर्वत दीखने लगा । यहाँ तेरे वियोगमें मैंने बड़े कष्टसे वर्षाकाल काटा था । यह पम्पासरोवर है । यहाँ वेतके वनमें सारसोंकी केलि और चकवा चकवीकी जलक्रीड़ा तेरे वियोगमें मुझे अधीर कर देती थी । उधर

देखो हमारे विमानके घूँघरुओंका शब्द सुन गोदावरी नदीके सारसगण पंक्तिवद्ध हो आकाशकी ओर उड़ने लगे हैं। आहा! वहुत दिनके वाद पञ्चवटीका दर्शन लाभ हुआ। हमारे विमानका शब्द सुन मृगगण आकाशकी ओर मुहँ उठाकर कैसे देख रहे हैं।

प्यारी यह देखो अगस्त्य ऋषिका पुण्याश्रम निकट आ गया इन्होंने भ्रूभङ्गमात्र ही से नहुष राजाको इन्द्रपदसे च्युत करदिया था। यह शातकर्णी मुनिका पंचाप्सर दिखाई पड़ता है। इन मुनिकी घोर तपस्यासे इन्द्रने भयभीत होकर पाँच अप्सराओंके द्वारा उनका तप भङ्ग कराया था। अव शातकर्णी मुनिजी इस सरोवरके जलके भीतर अप्सराओंके सङ्ग क्रीड़ा कौतुकमें मत्त हैं। देखो, अप्सराओंके मृदङ्ग वाद्य कैसे सुहावने लगते हैं। वह देखो, एक और ऋषि तपस्या कररहे हैं। इनकी चारोंओर चार जगहोंपर तपाग्नि जल रहीहै। ऊपरसे सूर्य तपते हुए आग वरसा रहा है। इन पञ्चतपा ऋषिका नाम सुतीक्ष्ण है। इन्द्र इनका घोर तप देखकर डरगए और तपभङ्गके लिए कई एक अप्सराएँ भेजी थीं। पर इन पूर्ण संयमी मुनिको तपसे न डिगा सकीं। सुतीक्ष्ण ऋषिजी मौनव्रतावलम्बी हैं। यह शरभङ्ग मुनिका पवित्र तपोवन है। ये महातपी ऋषि वड़े यशस्वी थे। इन्होंने जलतीहुई अग्निमें अपने शरीरकी आहुति देकर आत्मत्यागकी पराकाष्ठा दिखाई थी।

वह देखो चित्रकूट पर्वत दृष्टि आने लगा। वह देखो चित्रकूटके निकट बहनेवाली मन्दाकिनी नदीकी कैसी अपूर्व शोभा है। पहाड़के पास जो वृक्ष दीखता है वह हमारा चिरपरिचित तमालका पेड़ है। आगे अत्रि मुनिके आश्रमको देखो। यह वही अत्रि मुनि हैं। जिनकी पत्नी अनसूयाने ऋषियोंके स्नानके निमित्त सुरसरी गङ्गाजीका यहाँ आनयन कराया था। प्यारी, यह देखो श्यामनामक वटका वृक्ष कैसा मनोहर दीख पड़ता है।

आहा हा! यह प्रयाग क्षेत्र कैसा रमणीय स्थान है। यहाँ गङ्गा यमुनाके सङ्गमकी कैसी मनोहारिणी शोभा है? गङ्गाका जल दुग्ध फेनवत् उज्ज्वल है। और यमुनाका जल आकाशके समान नीलवर्ण वाला है। दोनों नदियोंके जलके मिलने पर ज्ञात होता है कि, मानो मोतियोंकी मालाके बीच २ में नीलम गुँथे हुए हैं। इस तीर्थमें आकर इस सङ्गममें स्नान करनेसे लोग अनायास मुक्ति लाभ करते हैं।

इधर देखो यह किरातपति गुहका नगर है। यहीं मैंने सिरके मुकुटको उतार जटा धारण किया था जिसे देख पितृसारथी सुमन्त्रने "हा कैकयी! तुम्हारे मनमें यही था" यह कहकर रोदन किया था। प्रिये! वह देखो हमारी जन्मभूमि अयोध्याकी पवित्र सरयू नदी दीख रही है, सरयू सामान्य नदी नहीं है। यह नदी "ब्राह्म" सरोवरसे उत्पन्न हुई है। इसका

जल स्वभावतः पवित्र है हमारे इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंने अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें इस नदीमें स्नानकर इसकी पवित्रता बढ़ाई है। यह कोशल देशवासियोंकी धात्रीके समान है। इस देशकी निवासी सरयूके सुधासम जल पानसे और उसके पुलिन देशमें स्वेच्छा विहारसे जो सुखानुभव करते हैं वह देवताओंको भी दुर्लभ है।

देखो आकाश मार्गमें धूल उड़रही है। हनुमानके मुँहसे मेरे आगमनका वृत्तान्त सुन भरत कदाचित् सेना सहित मेरी अगुवानी करने आ रहाहै। आहा हा! वह देखो महर्षि वशिष्ठके पीछे चीर वल्कलधारी भरत हाथमें अर्घ्य सामग्री लिए आ रहा है। भरतकी साधुता अवर्णनीय है। इस नवयौवन कालमें पिताकी दी हुई राजलक्ष्मीको तृणवत् त्याग चौदह वर्ष घोर तपस्या करना भरत जैसे भ्रातृवत्सल और त्यागी वीरका ही काम है।

रामचन्द्र इस भांति सीताजीसे वार्तालाप कररहे [illegible]त-नेमें पुष्पकविमान आकाश मार्गसे नीचे पृथ्वीकी [illegible] उत-रने लगा। प्रजा समाज आश्चर्यके साथ ऊपरकी [illegible] मुंह उठाकर विमानको देखने लगे। थोड़ी देरमें विमा[illegible]वीपर उतर आया। रामचन्द्रजी सुग्रीव और विभीष[illegible] सहित विमानसे नीचे उतरे और वशिष्ठजीको प्रणाम किया। फिर प्रेमपूर्वक भरतजीसे मिले और शत्रुघ्नको सस्नेह आलिङ्गन

किया । मन्त्रिवर्गोंकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टिपात कर रामजीने उनसे कुशलवार्ता पूछी फिर सुग्रीवकी ओर देखकर रामजीने भरतसे कहाः—देखो भाई भरत ! हमारे विषम सङ्कटके समय इन्हीं वानराधिप सुग्रीवने हमारी बड़ी सहायता की है । और यह जो सज्जन तुम्हारे आगे खड़े हैं वह पौलस्त्यके पुत्र और रावणके छोटे भाई हमारे मित्र विभीषण हैं । इन्हींकी कृपासे हम लंकायुद्धमें विजयी होसके । भरतजीने रामचन्द्रकी यह बात सुन लक्ष्मणजीको आलिङ्गन करना छोड़ सुग्रीव और विभीषणको आगे प्रणाम किया । फिर बड़े आदरके साथ भरतजीने लक्ष्मणजीको आलिङ्गन किया रामजीकी आज्ञासे कपिगण मनुष्य शरीर धारण कर हाथियोंपर सवार हुए विभीषण भी एक रथपर सवार होगए । रामचन्द्रजी तीनों भाइयोंके सहित पुष्पक विमानपर फिर आरूढ़ हुए । वहां भरतजीने साध्वी सिरोमणि अपनी पूज्य भौजाईजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया । फिर पुष्पक-विमान धीरे २ चलने लगा । प्रजागण भी आगे २ चलने लगे । इस प्रकार सब आध कोश निकल आए । और शत्रुघ्न द्वारा सजाए हुए अयोध्याके निकटके बडे बगीचेमें रामजीने डेरा किया ।

चौदहवाँ सर्ग।

रामचन्द्रजीका राजतिलक एवं शासन; सीताजीको गर्भ-ज्ञान होना; सीताजीका गङ्गा किनारे जानेकी इच्छा करना; सीताजीके विषयमें लोकापवाद; जानकीका वर्जन; वाल्मीकिजीका सीताजीको अरण्यमें अकेली देख निज आश्रममें ले जाना; रामजीका सोनेकी सीता बनाकर यज्ञ-क्रियादि करना।

शत्रुघ्नके बनाए बगीचेमें रामजी और लक्ष्मण अपनी दुःखिनी माताओंसे मिले। रामने पहले कौशल्याको और लक्ष्मणने सुमित्राको प्रणाम किया। फिर रामने सुमित्राको और लक्ष्मणने कौशिल्याकी पद वन्दना की। चौदह वर्षके वियोगके पश्चात् पुत्र और माताओंका मिलन आनन्दप्रद होनेपर भी बड़ा करुणापूरित हुआ। युद्धमें राम लक्ष्मणके शरीरपर जो घाव लगे थे उनपर उनकी माताओंने बड़े प्रेम और आकुलतासे कई बार हाथ फेरे।

फिर सीताजीने आँखें भरकर कहा कि, अपने कुटुम्बके सब क्लेशों और अनर्थोंकी मूल हतभागिनी सीता प्रणाम करती है यह कहकर अपनी शासुओंको प्रणाम किया। अपनी वधूकी विनीत और करुणामयी वाणी सुनकर शासुओंने उनसे कहाः—प्रिये सीता! तुम ऐसा क्यों कह रही हो। इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुम्हारे अविचल पातिव्रत धर्मके प्रभावसे सुकुमार राम लक्ष्मणको ऐसे घोर संकटोंसे निस्तार मिला।

फिर उस बगीचेमें श्रीरामजीके राज्याभिषेककी तैयारी होने लगी। सब सामग्री इकट्ठी की गई। रामजीने विधिवत् पवित्र जलसे स्नान कर मनोहर वस्त्र और अलंकार धारण किये। फिर एक बढिया रथमें सवार होकर अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया। भरत बड़ी नम्रतासे रामजीके सिरपर छत्र पकड़े हुए थे। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों ओरसे चवँर डुला रहे थे। साथमें सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद आदि बन्दरों तथा विभीषण और उनके साथी राक्षसोंकी भी सवारी आ रही थी। सीताजी जगमगाते हुए रत्नोंके अमूल्य आभूषण पहने "कर्णीरथ" नामक छोटे रथपर शोभित होकर रामजीके पीछे २ आती हुई अयोध्या वासिनी स्त्रियोंको मोहित करती थीं। अत्रि ऋषिकी स्त्री अनसूयाके दियेहुए उज्ज्वलतर पवित्र अङ्गरागको सीताजीके शरीरमें ज्वलन्त अनलके समान देखकर नर नारी आश्चर्यित हो रही थीं।

रामजीने राजभवनके निकट पहुंच कर अपने मित्रोंके रहनेके लिए स्थान बतला दिया। फिर रोते २ वे उस मकानको गये जिसमें उनके पिता राजा दशरथ रहा करते थे। मकान तो था वही पर वहाँ उनके पूज्य पिता उन्हें न मिले। रामजीको राजा दशरथका चित्र वहां लटका हुआ दृष्टि आया। उसे देखकर वे बहुत दुःखित हुए। फिर वे भरतजीकी माता कैकेयीके पास जाके हाथ जोड़कर बोले

कि, हे माता। तुम धन्य हो। तुमने पिताजीको सत्यभङ्गके पापसे बचाया। सत्यभङ्ग नरकसे भी बढ़कर होता है। पिताजी तुम्हारे प्रतापहीसे स्वर्ग पासके हैं।

फिर रामजी सुग्रीव, अङ्गद, विभीपण आदि बन्दर और राक्षसोंको नानाभांतिके उपहार देकर प्रसन्न करने लगे। इस प्रकार १५ दिन सहज ही बीत गये।

राज्याभिषेकमें जो देवर्षि और महर्षिगण आये हुए थे उनके द्वारा रामजीने अपनी सभामें रावणका जीवन वृत्तान्त श्रवण किया। ऋषियोंने रावणका वृत्तान्त क्या कहा मानो राम लक्ष्मणकी वीरता और धीरताका वर्णन किया। फिर ऋषिगण विदा होहोकर अपने आश्रमोंमें चले गये। सुग्रीव तथा विभीपण भी घर जानेकी तैयारी करने लगे। जानकी-जीने उन्हें अपने हाथोंसे बढ़िया उपहार दिया और वे विदा होकर घर चले।

रावणके पाससे जीतकर लाए हुये "पुष्पक" नामक विमानको रामजीने कुवेरके पास भेज दिया।

इस प्रकार रामजी अपने पिताकी आज्ञा पालन करके और तीनों लोकके कल्याण साधन करके राजपद पर आरूढ़ हुए। फिर भाइयोंमें प्रेम माताओंमें भक्ति और प्रजा-ओंमें विश्वास रखके न्याय नीतिके साथ वे राज्य करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजाके सुखकी सीमा न रही।

वे अपुत्रके पुत्र, पितृहीनके पिता, असहायके सहाय और चक्षुहीनके चक्षुके समान थे। उनकी निर्लोभताके कारण प्रजावृन्द सर्वसम्पन्न हो उठे। रामजीके राज्यमें विघ्न भयका नाम निशान तक न रहा। रामजी प्रतिदिन उचित समय पर राजकार्य किया करते थे। राजकार्य करनेके पश्चात् वे सीताजीके साथ नाना विषयोंकी आलोचना किया करते थे। और कभी कभी वनमें भोगे हुए दुःखोंपर भी बातचीत किया करते थे। राम लक्ष्मण और सीताजीके वनवासके विषयके जो चित्र बनाए गये थे उन्हें कभी देखकर राम जानकी अत्यानन्दित हुआ करती थीं।

इस भांति कुछ कालके उपरान्त सीताजीका गर्भ सञ्चार हुआ। धीरे धीरे गर्भके सब लक्षण प्रकट होने लगे।

यह देखकर रामजीके आनन्दकी अवधि न रही। वे एकान्तमें सीताजीको गोदमें लेके उनसे उनके मनोरथ पूछने लगे। सीताजी अत्यानन्दित होकर रामजीसे कहने लगीं कि, हे स्वामी! मेरी इच्छा गङ्गाजीके तटपर जो ऋषियोंके पवित्र आश्रम हैं वहां जानेकी हो रही है। वहां वनवास बन्धु वानप्रस्थ लोगोंकी कन्याओंसे मिलने जुलने और वार्तालाप करने तथा वहांके वन्य पशुओंके दर्शन करनेको मेरा मन बड़ा उत्सुक हो रहा है। रामजीने जानकीकी यह इच्छा सुनकर कहा कि, "प्यारी! हम तुम्हारा यह मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।"

एकबार रामचन्द्रजी अयोध्या नगरीकी शोभा देखनेके लिए अनुचरोंके साथ राजमहलकी अटारी पर चढ़े। वहाँसे वे जनाकीर्ण राजपथ, नौकाकीर्ण सरयू नदी और पुरी निकटस्थ वन उपवनोंकी शोभा देखकर अत्यानन्दित हुए। फिर वे भद्रनामक अपने दूतसे पूछने लगे कि भाई! हमारे शासनकालके विषयमें प्रजागणोंकी क्या सम्मति है? वे हमारी रीतिनीतिसे सन्तुष्ट हैं या नहीं। कोई हमारे ऊपर कुछ दोषारोप तो नहीं करता? यह सुनकर "भद्र" कुछ समयतक चुपचाप खड़ा रहा। रामजी उससे फिर पूछने लगे। तब भद्र कहने लगा कि, महाराज, वह कौन पापी होगा जो आपके सुशासनमें दोषारोप करेगा? सब लोग मुक्तकण्ठसे आपकी प्रशंसा कर रहे हैं। केवल महारानी जानकीजीके विषयमें कोई २ यह कहते हैं कि, वे दुराचारी रावणके यहाँ बहुत दिनों तक अकेली रहीं थीं आपने उन्हें पुनर्वार ग्रहण किया। यही एक दोष आपपर कुछ लोग लगा रहे हैं। यह अकीर्तिकर कलत्र निन्दा सुनकर रामजी वज्राहतके समान अचेत हो पड़े। फिर वे मनही मन कहने लगे, "हा! सर्वनाश उपस्थित हुआ! इसके बदले मेरे शिरपर वज्र क्यों न गिरा! हा प्रिये! हा मधुरभाषिणी!! हा जीवितेश्वरी!! हा सीते! तुम्हारा अन्तिम परिणाम ऐसा होगा यह मुझे स्वप्नमें भी ज्ञात नथा! हा प्रेयसी! तुमने चन्दन वृक्षके भ्रमसे विष

वृक्षका आश्रय लिया ! नराधम राम चाण्डाल मनुष्यके समान निष्ठुर होकर तुम्हें परित्याग करनेके लिए प्रस्तुत हो रहा है यह कहकर मूर्छितहो वह पृथ्वीपर गिरपड़े। फिर चेतना पाकर सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैं जीते जी मरचुका। सीता विषयक निन्दाको सुनी अनसुनी सी कर दूँ या लोकरञ्जनके लिए प्राणाधिका निरपराधा सगर्भा सीताका परित्याग करूँ !! ऐसा सोचकर उनका चित्त बिलकुल अस्थिर हो उठा। अन्तमें उन्होंने बहुत सोच विचारके पीछे यह स्थिर किया कि, दुःसह लोक निन्दा चारोंओर फैल रही है। इसके निवारणका कोई उपाय ही मुझे नहीं सूझता। सीताजीको त्यागनेके सिवा इस लोक निन्दाको दूर करनेका कुछ उपाय ही नहीं हाय ! सीते !! तेरा नराधम पति तुझे गर्भावस्थामें परित्याग करनेको दृढसंकल्प है। हा ! लोगोंको खुश रखना भी कैसा कठिन काम है ! राजा होना सब दुःखोंका द्वार है। राजाका धर्म प्रजा रञ्जन करना ही है। और प्रजारञ्जन तो इस सूर्यवंशका एकमात्र कुलव्रत है।

फिर रामजीने लक्ष्मण; भरत और शत्रुघ्न तीनों भाइयोंको अति शीघ्र बुलालानेके लिए दूत भेजा। तीनों भाई आज्ञा सुनते ही रामजीकी सेवामें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि, रामजी शोकाकुल होकर बैठे हुए हैं। उनकी

दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। रामजीकी ऐसी दशा देखकर तीनों भाई चित्रकी नाईं जहाँके तहाँ ही रहगये। कैसा घोर अनिष्ट हुआ इस शङ्कासे तीनों भाई विकल होकर भयसे काँपने लगे। किसीको यह साहस न हुआ कि, रामजीसे इस असमयके शोकका कारण पूँछे। थोड़ी देरके बाद रामजीने उन्हें बैठ जानेकी आज्ञा दी और कातरता पूर्वक सीता विषयक लोक निन्दाका वृत्तान्त उनसे कह सुनाया और बोले कि, भाइयो! देखो हमारे निष्कलङ्क सूर्यवंशमें यह घोर कलंक कालिमा लगकर जल-तरङ्गमें तैल बिन्दुके समान शीघ्रतासे फैलती जा रही है। लोकापवादको हम कदापि सह नहीं सकते। निर्मूल लोका-पवाद भी लोगोंको असह्य होताहै। जिस प्रकार पिताकी आज्ञा पालनके लिए समागरा वसुन्धराके महाभिषेकको हमने त्याग दिया था उसी भाँति इस घोर कलंकरूपी कालि-माको दूर करनेके लिए जनकनन्दिनी सीताको परित्याग करनेका हमने निश्चय किया है। हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि, सीताजी सबप्रकार निष्कलङ्क हैं तथापि यह दुर्नि-वार्य लोकापवाद हमें नितान्त असह्य हो रहा है। मनुष्य क्या नहीं कर सकते? देखो लोग पृथ्वीकी छायाको निर्मल चन्द्रमाके अङ्कमें कलङ्क कहते हैं। सीताजीको परित्याग करते देख तुम कह सकते हो कि, तब फिर वन

वनमें दुःख पाना और रावणका सवंश नाश करना किस कामका रहा सो बात नहीं। रावणका तो मैंने वैर-शोधनके लिए वध किया। भाई तुम लोगोंका स्वभाव बड़ा दयालु है। इससे मैं बार बार तुमसे कहताहूं कि, यदि अपवा-दरूपी बाणाघातसे विद्ध मेरे शरीरकी कुशल चाहते हो तो सीताके परित्याग करनेसे तुम मुझे न रोको। बड़े भाईकी यह बात सुनकर और सीताजीके प्रति उनका रूक्षभाव जानकर भरत आदि तीनों भाई रामजीके प्रस्तावका न तो निषेध करसके न अनुमोदन करसके। भय और विषादके अगाध समुद्रमें पड़कर वे "किं कर्त्तव्य विमूढ़" हो रहे।

फिर लक्ष्मणको अपने पास बुलाकर रामजी बोले कि, भाई! मैंने एकान्तमें तुम्हारी भौजाईको गर्भदोहद (अर्थात् गर्भवतीकी इच्छा) पूछा था। सीताने कहा था कि, भागीरथी तीरस्थ तपोवन दर्शनके हेतु मुझे इच्छा हो रही है। सो तुम उन्हें रथमें बैठाकर तपोवनमें ले जानेके मिस महर्षि वाल्मीकिके तपोवनमें उनके आश्रमके निकट परित्याग कर आओ।

लक्ष्मण रामजीके बड़ आज्ञाकारी थे। उन्होंने सुना था कि, पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने बिना आगे पीछे सोचे क्रूरभावसे अपनी माताका सिर हाथसे काट लिया था। सो वह भी पितातुल्य जेष्ठ भ्राताकी आज्ञा पालन करनेको

प्रस्तुत होकर बड़े करुणास्वरसे कहने लगे कि, आर्य! आपने जब जब मुझे जो जो आज्ञा दी हैं मैं बिना विचारे उसी समय उनका पालन करता गया हूँ कभी भी आपकी आज्ञाकी अवज्ञा मुझसे नहीं हुई है। और आज भी मैं इस निष्ठुर और शोकजनक कर्मके करनेके लिए तैयार हूं।

लक्ष्मण सीताजीकी सेवामें उपस्थित हो परित्यागकी बात छिपाके कहने लगे कि, आर्ये! आर्यने आपको तपोवन दर्शनार्थ भागीरथीके तीर देशको लेजानेकी आज्ञा दी है। सीता यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं। सुमन्त्र सारथी रथ तैयार कर उपस्थित हुआ। लक्ष्मण जनकतनया सीता देवीको रथमें बैठालकर रवाना हुए। रथ थोड़ी देरमें अयोध्यासे बाहर निकल गया।

सीताजी मार्गमें प्रकृतिकी मनोहारिणी शोभा देखकर अत्यानन्दित होने लगीं और मनमें सोचने लगीं कि, आर्यपुत्रका मुझपर कैसा प्रेम है। मेरी इच्छाको पूरी करनेमें उन्होंने जरा भी विलम्ब न किया। उधर तो सीताजी अपने पतिकी दयालुता और प्रेम देखकर आनन्दके सलिलमें स्नान कर रही हैं और इधर लक्ष्मणजी शोक समुद्रमें निमग्न होकर अपने कठोर आज्ञापालनके सोचमें व्याकुल हो रहे हैं। वह अपने मनके भावको छिपानेका ज्यों ज्यों प्रयत्न कर रहे थे

त्यों त्यों उनका हृदय शोकसे फटासा जा रहा था। इतनेमें सीताजीकी दाहिनी आंख फड़कने लगी और उनके मनका भाव बदलने लगा। दाहिनी आंखका फड़कना बड़ा अशुभ होता है सीताजी यह सोचकर घबराने लगीं। उनका मुख-कमल कुम्हला गया। वह मन ही मन कहने लगीं कि, इस चिर दुःखिनी अभागिनी सीताके कपालमें न जाने क्या क्या दुःख बदे हैं। जो हो ईश्वर आर्यपुत्र और प्यारे देवरोंका कोई अमङ्गल न हो। इस प्रकारकी प्रार्थना दुःख भरे हृदयसे सीताजी कर रही हैं। इतनेमें रथ भागीरथी गङ्गाजीके पुलिन देशमें जा पहुंचा। उस समय गङ्गा अपनी तरङ्गरूपी भुजा उठाकर लक्ष्मणजीको मानो पतिव्रता सीताके त्यागनेके लिए निषेध करने लगीं।

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सीता सहित रथसे उतरकर नाव-पर जा बैठे। नाविकोंने उन्हें शीघ्र गङ्गाजीके उस पारपर पहुंचा दिया। दोनों देवर भौजाई नावसे उतर किनारे पर गईं। थोड़ी देरके बाद लक्ष्मण हृदयविदारी शोकको सम्हाल कर और आँसुओंको ज्यों त्यों रोककर लड़खड़ाती हुई जबानसे कहने लगे "आर्ये! आप दुराचारी रावणके यहां अकेली बहुत दिनों तक थीं इससे लोग आपपर कलंक लगाते हैं। इसी लोकापवादके भयसे आर्यपुत्रने मुझे यह आज्ञा दी है कि; तपोवन दिखलानेके बहानेसे सीताजीको

वनमें लेजाकर महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके पास जन्मभरके लिए परित्याग कर आओ। रामजीकी इस कठोर आज्ञाके अनुसार वज्रहृदय दुरात्मा लक्ष्मण आपको यहां त्यागनेके लिए विवश हुआ।

लक्ष्मणजीकी यह बात सुनकर जानकी वज्राहत वृक्षके समान पृथ्वीपर चेतना रहित हो गिर पड़ीं। उनके शरीरके आभरण सब इधर उधर होकर गिर गए।

इक्ष्वाकुवंशोद्भव पुण्यश्लोक राजा रामचन्द्रजीने तुम्हें किस अपराधसे वर्जन किया; इसी संशयमें उनकी जननी पृथ्वी माताने कदाचित् सीताजीको अपने गर्भमें उस समय स्थान न दिया थोड़ी देरके बाद लक्ष्मणजीके यत्नसे उनकी मूर्छा दूर हुई। उनकी मूर्छा तो दूर हुई परन्तु यह चैतन्य-लाभ अचेतनावस्थासे भी अधिक कष्टदायक हुआ। यद्यपि रामचन्द्रजीने सीताजीको बिना अपराध ही परित्याग कर दिया था तथापि सती जानकीजीने उनपर जरा भी दोषारोप न किया वह अपनेको "चिरदुःखिनी; दुष्कर्मकारिणी; तथा हतभागिनी" कहकर बार बार अपनी ही निन्दा करने लगीं।

लक्ष्मणने सीताजीको सांत्वना प्रदान कर उन्हें महर्षि वाल्मीकिके आश्रमका मार्ग दिखला दिया। फिर बड़ी नम्रता पूर्वक दोनों हाथ जोड़ सीताजीसे विनय करने लगे कि; आर्ये! यह दास पराधीन है। प्रभुकी आज्ञा पालन करनेके लिए

विधाताने इस पाषाण हृदयको उत्पन्न किया है। इस निष्ठु-रात्माको इस कठोर कर्मके लिए क्षमा क़ीजियेगा। यह कह लक्ष्मण सीताजीके पैरोंपर गिर पड़े सीताजी लक्ष्मणको उठाकर कहने लगीं वत्स; चिरंजीवी होओ। इसमें तुम्हारा क्या अपराध है? मैं तुमपर जरा भी रुष्ट या असन्तुष्ट नहीं हूं। तुमने तो बड़े भाईकी आज्ञाका पालन कर अपना कर्तव्य किया है। अपने भाग्यदोषसे ही मैं रामचन्द्रजीके अनुग्रहसे जन्मभरके लिए वञ्चित हुई। लक्ष्मण; तुम सब शासुओंके चरणोंमें मेरा प्रणाम निवेदन कर कहना कि मैं गर्भवती हूं। वे इस बातको ध्यानमें रख मुझे न भूलेंगी यही मेरी प्रार्थना है। राजा अवधेशसे मेरी यह विनय सुनाना कि, उन्होंने अपने सम्मुख मेरी पवित्रताकी अग्निपरीक्षा कराके भी मुझे अकारण परित्याग किया; यह कर्म क्या रघुवंशियोंके अनुरूप हुआ है! अथवा यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। आर्यपुत्रको मैं क्यों व्यर्थ दोष दूँ? यह सब मेरे ही पूर्व जन्मार्जित पापोंका फल है। हाय! एक दिन मैं जिनकी कृपासे निशाचरोंके उपद्रवोंसे पीड़ित और दुःखित मुनिपत्नियोंकी शरण देनेवाली थी वही आज उनके रहते किस प्रकार औरोंकी शरण लूँगी। लक्ष्मण जब इस गर्भमें आर्यपुत्रका अंश न होता तो तुम मुझे अब-तक जीवित न पाते! प्रसवके पीछे मैं सूर्य देवकी तपस्या कर यही वरदान मागूँगी कि, अगले जन्ममें भी आर्यपुत्र

रामचन्द्रजी ही मेरे पति हों और मुझे यह विरहयन्त्रणा सहनी न पड़े। मनुका वचन है कि, वर्णाश्रम पालन ही राजाओंका मुख्य धर्म है। अतएव हे वत्स लक्ष्मण! तुम आर्यपुत्रसे यह विनय करना कि, मैं उनकी अर्धाङ्गिनीके पदसे च्युत होकर भी साधारण तपस्विनीके रूपमें उनकी प्रजा हूँ। वे इस अनाथिनी अबला निःसहाया प्रजाको भूल न जायँगे।

लक्ष्मण सीताजीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके उनसे विदा हुए और गङ्गा पार हो रथपर जा बैठे। रथ धीरे २ चलने लगा। सीताजी जहाँतक नज़र पहुंची रथको देखती रहीं। रथ बहुत जल्द उनके दृष्टिपथसे लोप होगया। रथको न देख सीताजी दुःसह दुःखसे तप्त होके ऊँचे स्वरसे कुररी पक्षीकी नाईं रोने और विलाप करने लगीं। उस समय उनके करुण क्रन्दनको श्रवण कर दुःखके मारे वन भी रोने लगा। मयूरगण आनन्दके नांच छोड़कर आकाशकी ओर देखने लगे। मृगगणोंने अपने मुखके तृण त्याग दिये। और वृक्षगण कुसुम वर्षणके छलसे अश्रुपात करने लगे।

उस समय महर्षि वाल्मीकि समिध तथा कुश आदिके लिए उधर ही गए हुए थे। उनके कानोंमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज़ पहुंची। वह वहां पहुंचे जहां सीताजी रोती खड़ी थीं। सीताजीने मुनिको देखकर अपने

शोकके वेगको रोका और अपने आँसू पोंछकर उनको प्रणाम किया । आदिकविने सीतामें गर्भ लक्षण देख आशीर्वाद किया कि, " आर्ये ! पुत्रवती भव । " फिर दयार्द्र वाक्योंमें कहने लगे कि, वत्स, वैदेहि, तुम कातर मत होओ । हमने ध्यानबलसे जान लिया कि, लोकनिन्दाके भयसे रामचन्द्रजीने तुम्हें विना अपराधके त्यागन किया है । तुम कुछ चिन्ता न करो । तुम यह समझो कि, तुम अपने पिताके घरमें पहुंच गई हो । रामचन्द्रजीने रावणको मारकर संसारको निष्कण्टक कर दिया है, उनमें लेशमात्र भी आत्मश्लाघा नहीं है तथापि उनपर मेरा क्रोध हो रहाहै क्योंकि तुमको उन्होंने अकारण परित्याग किया है । वत्से, तुम्हारे श्वशुर राजा दशरथ मेरे मित्र थे, तुम्हारे पिता राजर्षि जनक बड़े ज्ञानी और परोपकारी हैं एवं तुम स्वयं पतिव्रताओंमें अग्रगण्या हो । तुम सब प्रकार मेरी कृपाभाजन हो । वत्से, भय त्यागकर तुम हमारे इस तपोवनमें रहो । इस तपोवनमें हिंसक पशु भी हमारे सहवाससे प्रेमपूर्वक शान्तभावसे रहा करते हैं । वे कभी किसीको सताते या छेड़ते नहीं । यहाँ मुनियोंके आश्रम बहुतसे हैं । उन आश्रमोंकी मुनि कन्यागण तुम्हारी सेवा शुश्रूषा सब भाँति किया करेंगी । उनके सङ्गमें रहकर तुम अपना दुःख बहुत कुछ भूल जाओगी । तुम्हारे सन्तान होनेपर उनके जातकर्मादि

संस्कारमें भी कोई त्रुटि न होने पावेगी। तुम्हें यहाँ किसी प्रकार कष्ट भोगना न पड़ेगा। मैं तुम्हें अपनी पुत्रीकी भाँति पालन पोषण करूंगा।

सीताजी महर्षि वाल्मीकिकी यह बात सुनकर कुछ शान्त हुईं। इतनेमें सन्ध्याकाल आ उपस्थित हुआ। महर्षि वाल्मीकि सीताजीको साथमें लेकर तपोवनमें पहुंचे। वहाँ उन्होंने सीताजीको समवयस्का मुनिकन्याओंके पास सौंपदिया। मुनिकन्यागण सीताजीसे मिलकर बड़ी प्रसन्न हुईं और आदरके साथ उनको भोजन कराया। फिर मृगचर्मकी शय्या प्रस्तुत कर एक कुटीरमें उनके सोनेका प्रबन्ध कर दिया। सीताजी तपस्विनियोंकी कृपापात्री होकर चीरवल्कल धारणपूर्वक तपस्विनीकी भाँति उस कुटीमें रहने लगीं। और पतिकी वंशरक्षाके हेतु कष्टके साथ जीवन धारण कर दिन बितानें लगीं।

इधर लक्ष्मणजी अयोध्या लौटते हुए सोचने लगे कि, आर्या सीताका परित्याग कर रामचन्द्र अवश्य घोर पश्चात्तापसे तापित होते होंगे। फिर उन्होंने अयोध्या पहुंच कर सीताजीका सब वृत्तान्त आद्योपान्त रामजीसे कह सुनाया सीताजीके विलाप आदिका वृत्तान्त सुन रामजी बड़े व्याकुल हुए। वे शोकके वेगको न रोक सके। उनकी आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगी। रामजीने केवल लोकनिन्दाके भयसे प्राणाधिका सीताको गृहसे निर्वासित किया था परन्तु वे उन्हें

हृदयसे निर्वासित न कर सके । आठों याम सीताजीका ध्यान उनके हृदयमें बना रहता था ।

किसी भांति शोकको रोककर रामजी राजकाज करने लगे । इस प्रकार कुछ काल बीत गया ।

रामजीने सीताजीको परित्यागे करके फिर दूसरा विवाह न किया । वे सुवर्णकी सीता प्रस्तुत कराके उस मूर्तिके साथ अश्वमेध यज्ञ करने लगे । यह वृत्तान्त धीरे २ सीताजीके कानमें पहुंचा । इस वृत्तान्तसे उन्हें कुछ सन्तोष हुआ और वे बड़े कष्टसे पति विरहका दुःसह दुःख सहने लगीं ।

पन्द्रहवाँ सर्ग ।

लवण राक्षसको मारनेके लिए रामजीका शत्रुघ्नको यमुना किनारे भेजना; कुश लवका जन्म; लवण राक्षसका वध; वाल्मीकिजीका लव कुशको रामायण सिखाना; शत्रुघ्नका जी मधूपघ्न नगरीसे लौटना; शम्बूक नाम शूद्रके तप करनेके पापसे एक ब्राह्मणके पुत्रकी अकाल मृत्यु होना; रामजीका शम्बूकको मारना और ब्राह्मणके पुत्रका जी उठना; अश्वमेध यज्ञ; यज्ञमें कुश लवके साथ वाल्मीकिका अयोध्या आना; कुश लवका अपूर्व गान और परिचय; सीताजीको वाल्मीकिका अयोध्या लाना; सभामें सीताजीकी सत्यपरीक्षा और पाताल प्रवेश; भरत और लक्ष्मणके पुत्रोंको राज्य देना;

काल-पुरुषसे बातचीत; लक्ष्मणका शरीरत्याग; कुश लवको राज्य दे रामजीका स्वर्गारोहण।

रामचन्द्र सीताजीको परित्याग कर ससागरा पृथ्वीका विधिवत् शासन करनेलगे। यमुना नदीके किनारे "लवण" नामका एक दुष्ट राक्षस रहता था। वह ऋषि मुनियोंको बहुत दुःख दिया करता था। इससे ऋषिगण रामजीके पास जाकर विनय करने लगे कि, "महाराज लवण राक्षससे हमारी रक्षा कीजिए। वह हमें बड़ा कष्ट दे रहा है। जबतक उसके हाथमें शूल रहेगा तबतक उसे जीतना बड़ा कठिन है। इससे आप जब उसके हाथमें शूल न रहे उसी अवस्थामें उसका आक्रमण करें।"

रामचन्द्रजीने यथा नाम तथा गुणवाले शत्रुघ्नको मुनियोंके साथ उस दुष्ट राक्षसको मारनेके लिए भेजा। ऋषियोंके साथ साथ शत्रुघ्न क्रमशः वाल्मीकि मुनिके आश्रममें पहुँचे। वाल्मीकि मुनिने शत्रुघ्नका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। शत्रुघ्न उस आश्रममें रातभर रहे दैवात् उसी रात्रिको सीताजीके गर्भसे दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। यह खबर शत्रुघ्नजीके कानमें पहुँची। वह सीताजीके सकुशल आश्रममें रहने और उनके दो यमज पुत्रोत्पत्तिका शुभ समाचार सुन बड़े आनन्दित हुए। सबेरे वाल्मीकिकी आज्ञासे वह आगे बढ़े और यथा समय मधूपघ्न नामक नगरमें पहुँचे। इसी नगरमें रावणकी

वहन कुम्भीनसीका पुत्र लवण राक्षस रहता था । जिस समय शत्रुघ्न उस नगरमें पहुँचे उस समय वह राक्षस वनसे लौट रहा था। रंग उसका धूएँके समान काला था बाल उसके आगकी लपटके समान लाल २ थे और उसके शरीरसे चर्व्बीकी सी दुर्गन्ध उठ रही थी। शत्रुघ्नने देखा कि, उस समय उसके हाथमें त्रिशूल नहीं था और उस पर आक्रमण किया । दोनोंमें घोर युद्ध हुआ । अन्तमें शत्रुघ्नने उसके हृदय पर एक ऐसा तीक्ष्ण बाण मारा कि, वह धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके गिरनेसे पृथ्वी भूकंपके समान काँप उठी । सब ऋषि मुनि और देवतागण शत्रुघ्नके बलकी प्रशंसा करते उन्हें धन्यवाद देने लगे । फिर शत्रुघ्नने यमुना नदीके तटपर मथुरा नामका एक नगर बसाया और वहां कुछ दिन निवास किया ।

इधर वाल्मीकि मुनिने अपने मित्र राजा दशरथ और राजा जनकके सन्तोषके लिए सीताजीके पुत्रोंके जातकर्मादि संस्कार किए । कुश तृण और गायके पुच्छके लोम द्वारा दोनों कुमारोंके गर्भक्लेद (गर्भकी पीड़ा) दूर हुए थे अतएव आदि कविने एकका नाम कुश और दूसरेका नाम लव रक्खा । फिर मुनिने उन दोनों भाइयोंको विधिवत् वेद वेदाङ्ग की शिक्षा दी और अपनी बनाई हुई " रामायण " सिखाई । पढ़नेमें लव कुश बड़े ही तीव्र थे । गानविद्यामें तो

उनकी समता करनेवाला भूमण्डलमें कोई न था। जिस समय वे एक सुर करके अपने गुरु वाल्मीकिरचित रामायणका गान करते थे तो श्रोतागण अपनेको भूल जाते थे।

रामजीके शेष तीनों भाइयोंके भी दो दो पुत्र हुए। शत्रुघ्नके एक पुत्रका नाम "शत्रुघाती" और दूसरेका "सुबाहु" था। शत्रुघ्न अपने दोनों पुत्रोंको "मथुरा" और "विदिशा" नाम नगरोंका राज्य देकर रामजीके दर्शनके लिये अयोध्या लौट गए। रास्तेमें महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें वे अपने भतीजे लव कुशके मुखसे, रामायणका गान सुनकर अतीव प्रसन्न हुए। फिर वे अयोध्यामें पहुंचे। और रामजीसे सब वृत्तान्त कहा। परन्तु सीताजी और उनके पुत्रोंके विषयमें उन्होंने रामजीसे कुछ भी न कहा क्योंकि वाल्मीकिजीने उन्हें ऐसा कहनेसे मना करदिया था।

एक वार रामजीके राज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र मरगया। वह पुत्र कम उम्रका बच्चा था ब्राह्मण उसे गोदमें लेकर राज द्वारपर पहुँचा और उसे वहां रखकर जोरसे रोतेहुए कहने लगा कि, "हे पृथ्वी! रामचन्द्रके राज्यमें तुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। पिताके रहते पुत्रकी अकाल मृत्यु हो रहीहै। ऐसी बात राजाके पापसे होती है"। रामजी ब्राह्मणकी बात सुन बहुत लज्जित हुए। क्योंकि इक्ष्वाकुवंशियोंके राज्यकालमें अकाल मृत्यु कभी नहीं हुई थी।

वे फिर इसके हेतु पुष्पक रथपर आरूढ होकर प्रस्थानित हुए। अन्तमें एक स्थानमें पहुँच कर उन्होंने देखा कि, एक वृक्षके नीचे आग जल रही है। एक आदमी उस शाखा में अपने दोनों पांव बाँधकर नीचे मुख किए लटका हुआ है। और आगके धुएँको पीतेहुए घोर तपस्या कर रहा है। पूछने पर मालूम हुआ कि, वह "शम्बूक" नामक शूद्र है और स्वर्गप्राप्तिके लिये ऐसी घोर तपस्या कररहा है। शूद्रको तपस्या करना मना है। इससे रामजीने उस पापीका शिर काट लिया। शूद्रके शिर काटनेपर ब्राह्मणका पुत्र फिर जी उठा। ब्राह्मण यह देखकर रामजीपर बहुत सन्तुष्ट हुआ रामजी जब अयोध्याको लौट रहे थे तब महर्षि अगस्त्यने उन्हें एक अपूर्व अलङ्कार (गहना) दिया। यह अलङ्कार अगस्त्यको उस समय समुद्रने दिया था जब उसे वे पी गये थे। रामचन्द्रजी यथासमय अयोध्या पहुँचे।

फिर रामचन्द्रजीने अश्वमेध यज्ञके लिए घोड़ा छोड़ दिया। राक्षस, कपि, तथा राजा और ऋषिगण अब अयोध्यामें आने लगे धूमधामके साथ यज्ञका कार्यारम्भ हुआ। सीताजीके बदले रामजीने सीताजीकी एक सुवर्णमूर्ति बनवाकर यज्ञ कार्य पूर्ण किया।

रामजीके द्वारा निमंत्रित होकर ऋषियोंके साथ महर्षि वाल्मीकि भी यज्ञके उपलक्षमें अयोध्या आए हुएथे। उनके

साथमें कुश और लव भी थे। वाल्मीकि मुनिने उन्हें पहलेसे रामायण गानेकी शिक्षा दे रखी थी। महर्षि वाल्मीकिकी आज्ञासे कुश लव दोनों भाई अपने मधुर स्वरसे रामायणकी कथा गागाकर लोगोंको मुग्ध करने लगे। उनके रूप गुण और रामायण गानेकी निपुणताकी चर्चा जगह जगह होने लगी। धीरे धीरे उनके रूप गुणकी प्रशंसा रामजीके कानोंमें पहुँची। रामजीने उन दोनों कुमारोंको अपनी सभामें बुलाया और उन्हें रामायण गानेकी आज्ञा दी। लव कुश रामायण गाने लगे। उनका गाना सुनकर सभा चकित हो रही। दोनों बालक रूपरङ्गमें राजा रामचन्द्रके ही समान थे। लोग यह देख नानाभाँति सोच विचार करने लगे। रामजी उनके गानेसे सन्तुष्ट होकर उन्हें उपहार देने लगे। पर उन्होंने पुरस्कार लेनेसे अस्वीकार किया। यह देख सब लोग विस्मित हुए और उनकी बड़ाई करने लगे। फिर रामजीने पूछा कि, तुम्हें गाना किसने सिखाया और यह रामायण किस कविकी रचना है। कुश लवने उत्तर दिया कि; महर्षि वाल्मीकि हमारे शिक्षागुरू और इस काव्यके कवि हैं। रामजी यह सुनकर भाइयोंके साथ महर्षि वाल्मीकिके निकट जाकर अपना सारा राज्य उन्हें देने लगे। वाल्मीकि मुनि बोले कि, हे रामचन्द्रजी; कुश, लव दोनों आपके ही पुत्र हैं। आपने निरपराधा सीताको त्याग दिया है सो हमारे

अनुरोधसे आप उन्हें फिर ग्रहण करें। रामजी बड़े दुःखके साथ कहने लगे हे मुनिराज। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, सीता शुद्धाचरण और पतिव्रता है। परंतु हमारी प्रजाओंको उसके शुद्धाचरणपर शङ्का हुई है। और इसी प्रजा रञ्जनके लिये मैंने उन्हें त्याग दिया है। यदि वह अपने शुद्धाचरण और पातिव्रतकी परीक्षा प्रजाके सम्मुख देकर उनकी शङ्का दूर करदें तो उन्हें पुनर्वार ग्रहण करनेमें हमें कुछ आपत्ति नहींहै।

रामचन्द्रजीकी ऐसी बात सुनकर महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंको साथ ले सीताजीको अयोध्या लिवा लाये। फिर रामजीने अपने पुरवासियों और प्रजाको एकत्रित कर वाल्मीकि मुनिको समाचार दिया। वाल्मीकि मुनि सीता देवीको साथमें ले सभामें उपस्थित हुए। फिर वाल्मीकिजी सीताजीसे बोले कि, हे पुत्री! तेरे चरित्रपर लोग कलंक लगाते हैं। आज तू अपने पति और पुरजनोंके सम्मुख इस भरी सभामें अपने सतीत्वकी परीक्षा देकर सबकी शङ्का दूर कर। मुनिकी यह बात सुनकर सीताने वाल्मीकि ऋषिके शिष्य द्वारा लाए हुए पवित्र जलसे आचमन किया और कहने लगीः—हे पृथ्वीमाता! हे भगवती विश्वम्भरे! यदि तन मन वचनसे मैं रामजीके अतिरिक्त अन्य पुरुषको नहीं जानती हूँ तो तुम मुझे अपने गर्भमें स्थान दो। सीताजीके इतने कहते ही पृथ्वीमें एक रन्ध्र प्रगट हो गया और उस

रन्ध्रसे विजलीकासा प्रकाश वहिर्गत हुआ। थोड़ी देरके वाद एक प्रकाण्ड सर्पके फणपर एक दिव्य सिंहासन दिखाई पड़ा। उस सिंहासनमें साक्षात् वसुन्धरा देवी बैठी थीं। पृथ्वीने अपनी कन्या सीताजीको गोदमें ले लिया। सीता रामजीकी ओर दृष्टि लगाए माता पृथ्वीके गर्भमें प्रवेश करने लगी। रामजी "नहीं नहीं" कहते रह गये। सीता रसातलमें प्रविष्ट होगईं। रामजी यह देखकर पृथ्वीपर बड़े क्रुद्ध हुए। वह धनुषवाण लेकर सक्रोध खड़े होगए। वशिष्ठजीने उन्हें शान्तकर कहा कि, भावी कभी नहीं अन्यथा होती।

फिर रामजीका यज्ञ पूर्ण हुआ। यज्ञमें आएहुए ऋषिमुनि राजा महाराजाओंको उचित पुरस्कार देदेकर रामजीने विदा किया। रामजी कुश लवको बड़े स्नेहसे रखने लगे। फिर भरतजीके मामा युधाजितके आदेशसे रामजीने भरतको सिन्धु नामक देशका राजा बनाया। भरतजी अपने शत्रुओं-को जीतकर सुखसे राज्य करने लगे। तक्ष और पुष्कल नामकी दो राजधानी भरतजीके राज्यमें थीं। भरत अपने दोनों पुत्र तक्ष और पुष्कलको उक्त दोनों नगरोंका राजा नियुक्त कर रामजीके निकट चले गए। लक्ष्मणने रामजीकी आज्ञासे अपने पुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतुको कारापथ नामक राज्यका अधीश्वर नियुक्त किया। इस प्रकार तीनों भाई

अपने २ पुत्रोंको राज्य देकर स्वर्गारूढ़ माताओंका श्राद्ध तर्पण आदि विधिवत करने लगे।

एकबार स्वयं यमराज काल मुनिवेष धारण करके रामजीके पास आए और बोले कि हे राम ! हम आपसे कुछ बातचीत करना चाहते हैं; हम दोनोंके सिवा कोई तीसरा व्यक्ति हमारी बात न सुने । बातचीत करतेमें कोई तीसरा व्यक्ति यदि हमारे पास आवे तो उसे जन्म भरके लिए त्यागना होगा । राम इसे स्वीकार करके उस मुनिको एक एकान्त स्थानमें लेगए और लक्ष्मणको द्वाररक्षा करनेकी आज्ञा दी । मुनि एकान्तमें रामजीसे कहने लगे कि, मैं यमराज हूं । ब्रह्माने मुझे आपके पास भेजा है । आप अब स्वर्गारोहण कीजिए । उधर तो रामजी और यमके बीच ऐसी बातचीत हो रही थी । इधर रामजीके दर्शनके लिए क्रोधी दुर्वासा ऋषि आ द्वारदेशमें उपस्थित हुए । लक्ष्मण रामजीकी प्रतिज्ञाको जानते थे तथापि वह ऋषिकी आज्ञासे गुप्तस्थानमें जाके रामजीके आगे खड़े हुए । रामजीकी प्रतिज्ञा थी कि, जो कोई यहाँ आवेगा वह जन्मभरके लिए त्याग दिया जायगा । सो लक्ष्मणजीने सरयू नदीमें प्रवेश कर देह त्याग दिया और बड़े भाईकी प्रतिज्ञा पालन की । धन्य लक्ष्मण ! !

लक्ष्मण जैसे भाईके वियोगसे रामजी बड़े दुःखित हुए। फिर वे कुशावती नामक राजधानीमें कुशको और शरावती नामक राजधानीमें लवको राजा नियुक्त करके स्वर्गारोहणकी इच्छासे भाइयोंके सहित उत्तरकी ओर चले। सारी अयोध्या उनके पीछे रोतीहुई चली। सब राक्षस और कपिगण भी वहां आ पहुँचे। रामजी क्रमशः सरयू नदीके तीर पर पहुँचे। उनके लिए दिव्य रथ स्वर्गसे आपहुँचा। रामजी सब अनुचर वर्गोंसे बोले कि, तुम लोग सरयू नदीमें स्नान करो। स्नान करते ही तुम सब स्वर्गमें पहुँच जाओगे। सब लोगोंने वैसा ही किया और अनायास स्वर्गमें पहुँच गये। सरयु नदीके जिस स्थलपर सब लोगोंने स्नान किया था वह स्थान अब "गोप्रतरण" नामक तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। सुग्रीव आदि वन्दरोंने अपने २ शरीर त्यागकर देवमूर्ति धारण कीं। रामजीने इन सब लोगोंके लिए दूसरा स्वर्ग निर्माण कर दिया। इस भाँति भगवान् रामचन्द्रजीने रावणको मार देवकार्य सम्पादन किया और दक्षिण दिशाके पर्वतमें विभीषणको और उत्तर दिशाके पर्वतमें हनुमानको कीर्तिस्तम्भकी नाई स्थापित कर अपने विश्वव्यापी रूपमें प्रविष्ट हुए।

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन प्रत्येकके दो दो पुत्र हुए। इस प्रकार राम, लक्ष्मण आदिके वंशरूपी वृक्षसे आठ शाखाएँ हुईं। इन आठों भाइयोंमें कुश सबसे बड़े थे। जिस भाँति वे उम्रमें बड़े थे वैसे ही गुण और बुद्धिमें भी बड़े थे। सातों छोटे भाई उनकी बड़ी इज्जत करते थे। कुश भी उन्हें खूब चाहते थे। कुश अपने सातों भाइयोंको सन्तुष्ट रखकर राज्य शासन करने लगे। उनके शासन कालमें प्रजाओंकी बड़ी उन्नति हुई। उन्होंने नदियों पर पुल बँधाकर यात्रियोंके बड़े उपकार किये। खेती और व्यापारकी रक्षा और वृद्धिके लिए भी उन्होंने यत्न किये। गोरक्षा पर भी उनका बड़ा ध्यान था। प्रजा उनके राज्यमें बड़े सुखसे रही। हाथी पकड़नेका राजाको बड़ा शौक था। कुशने अपने छोटे भाइयोंके हिस्सों पर हस्ताक्षेप कभी नहीं किया।

एक बार कुश कुशावती नामक राजधानीमें अपने शयनागारमें रात्रिके समय सो रहे थे। इतनेमें एक स्त्री उनके सम्मुख जा खड़ी हुई और बोली कि, राजाकी जय हो। कुश आँख खोलकर क्या देखते हैं कि, एक स्त्री उनके सम्मुख खड़ी है। शयनागारके सब द्वार बन्द हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि, यह अपरिचिता स्त्री किस भाँति और क्यों रात्रिकालमें

यहाँ उपस्थित हुई है? फिर कुशने उस स्त्रीसे उसका नाम धाम और आनेका कारण पूछा। वह बोली कि, मैं अयोध्या नगरीकी अधिष्ठात्री देवी हूं। तुम्हारे पिता रामचन्द्रजीके स्वर्गारोहणसे अमरावतीको तुच्छ समझनेवाली परम सुन्दरी अयोध्या नगरी आज हीना दीना मलीना हो रही है। अलकापुरीको पराभव करनेवाली वह पुरी आज श्मशान हो रही है। हा कष्ट! आपके सदृश रघुवंशीय महाराजके रहते भी हमारी यह दुर्दशा!! इस भांति कुशके आगे वह अयोध्या नगरीकी दुर्दशाका वर्णन बड़े मर्मस्पर्शी तथा कारुणिक भाषामें करने लगी और विनय करने लगी कि, हे महाराज! आप अपनी पैत्रिक राजधानी अयोध्यामें चलकर उसे फिरसे सनाथा कीजिए। कुशने उस देवीकी यह प्रार्थना स्वीकार की। फिर प्रातःकाल होने पर उन्होंने यह सारा हाल अपने मन्त्री और सभासदोंसे कह सुनाया। अब उन्होंने अयोध्याजानेकी तैयारी की और कुशावती राजधानीको वेदज्ञ ब्राह्मणोंको प्रदान करके वे अपने कुटुम्ब और सैन्य सहित अयोध्याको प्रस्थानित हुए। कुशने अयोध्या पहुंचकर थोड़े दिनोंमें ही उस नगरीका चतुर और सुनिपुण कारीगरोंकी सहायतासे जीर्णोद्धार कराया। अब तो अयोध्यापुरी अमरावतीको भी तुच्छ समझने लगी। विमलचारिता शौर्यशक्ति आदि सुगुण भरिता पतितपावनी सरयू सरिताके

शोभा अलौकिक हो उठी । महाराज कुश अयोध्यापुरीमें बड़े न्यायनीतिके साथ राज्य करने लगे ।

क्रमशः ग्रीष्म ऋतु उपस्थित हुआ । सूर्य भगवान् दक्षिण दिशासे मुहँ फेरकर धीरे धीरे उत्तर दिशाकी ओर आगे बढ़े उत्तराखण्डके पर्वतगण हिमरूपी तरल एवं शीतल आनन्दाश्रु बहाने लगे । रात, दिन दिन क्षीण होने लगी । दिवसके मानके साथ गर्मी भी बढ़ने लगी । सर सरिताओंके जल सूखने लगे । जलाभावके कारण कमलकुलकी दशा शोचनीय हो उठी । तालावके जल काई और कीचड़ पूर्ण हो गए । वनमें मल्लिका खिलकर अपने आमोदसे वनप्रदेशको आमोदित करने लगी भौंरे खिले पुष्पोंको चूम २ कर इधर उधर सुखसे घूमने लगे । दिशाएँ रजःपूर्ण हो उठीं । एकबार कुश इसी ग्रीष्म ऋतुमें सरयू नदीमें जल क्रीडा करने लगे । उनके साथ उनकी अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी थीं ।

अगस्त्य ऋषिने रामजीको जो अमूल्य आभूषण प्रदान किया था उसे रामजीने राज्याभिषेकके समय अपने पुत्र कुशको दे दिया था । जलविहारके समय वह आभूषण जलमें खो गया । जब कुश जलविहारसे बाहर तटपर आए तो उन्होंने देखा कि अपने बाहुमें वह आभरण नहीं है । उन्होंने उस आभूषणकी बहुत खोज कराई पर सब निष्फल हुआ । उन्हें वह आभ-

रण न मिला। अन्तमें लोगोंने उनसे कहा कि, महाराज इस ह्रद (कुण्ड) के भीतर कुमुद नामका एक नागराज रहता है। कहीं वह तो लोभवश हो उस आभूषणको न लेगया हो? यह सुनते ही कुशके नेत्र लाल २ हो उठे। उन्होंने उस नागराजको नष्ट करनेके लिए धनुषमें गरुड़ास्त्र सन्धान किया। यह देख कुमुद भयभीत होकर एक दिव्य सुन्दरी कुमारीको सङ्गमें ले कुशकी सेवामें उपस्थित हुआ। कुशने उस कुमारीके हाथमें अपना आभरण देखकर गरुड़ास्त्रको उतार लिया। कुमुद महाराज कुशके चरणों पर गिरकर विनय करने लगा कि, हे महाराज! आप त्रिलोकीनाथ राम चन्द्रजीके पुत्र हैं। आप हमारे सर्वथैव पूजनीय हैं। आपके कोपभाजन हो हम संसारमें किस जगह शरण पा सकते हैं? हमारी यह बहिन गेंद खेल रही थी। इतनेमें आपका यह दिव्य आभूषण उसे दिखाई पड़ा। बाल्य चञ्चलतावशतः उसने उस दिव्य आभरणको उठा लिया। हमें इस दोषके लिए आप क्षमा करें। और इस आभरणके सङ्गमें हमारी कनिष्ठा भगिनी कुमुद्वतीको भी सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कीजिए। कुश यह सुनकर बड़े खुश हुए। फिर कुमुदने बन्धु बान्धवोंके सहित कुमुद्वतीको यथाविधि महाराज कुशके करमें अर्पण किया। तक्षकके पञ्चम पुत्र कुमुद और त्रिलोकीनाथ रामचन्द्रके पुत्र महाराज कुश दोनों इस परस्पर

सम्बन्धसे अति सन्तुष्ट हुए । इस सम्बन्धसे दोनोंको बड़ा लाभ पहुँचा । कुमुद आदि सर्पोंको गरुड़के भयसे छुटकारा मिला और कुशके राज्यसे सर्प भय दूर होगया ।

सत्रहवां सर्ग.

कुमुद्वतीके गर्भसे कुशका एक पुत्र सन्तान उत्पन्न हुआ। माता पिताके आनन्दकी सीमा न रही । मातृ और पितृकुल दोनों इस राजकुमारके जन्मसे पवित्र हुए । माता पिताने इस बालकका नाम अतिथि रक्खा। सर्वगुणोंपेत कुशने यथासमय अपने पुत्रका शिक्षारम्भ कराया । थोड़े ही दिनोंमें अतिथि शस्त्रविद्या शास्त्रविद्या, और राजनीति आदिमें सुनिपुण होगये। फिर कुशने अपने कुमारका विवाह कार्य सम्पादन किया । अतिथि बड़े बलवान्, रूपवान्, सुशील और जितेन्द्रिय थे। कुश राजा ऐसे पुत्ररत्नकी प्राप्तिसे अपनेको भाग्यवान् समझते थे।

एक बार इंद्र और दुर्जय नामक दैत्यके बीच बड़ाभारी संग्राम हुआ। दुर्जय राक्षस यथानाम तथागुण था। उसको जीतना टेढ़ी खीर था। कुश बड़े शूरवीर और धनुर्धर योद्धा थे। देवराज इन्द्रने महावीर कुशसे सहायता मांगी और उस दैत्यको मारनेके लिए विनय की। कुश अपने कुलकी रीति-

के अनुसार इन्द्रकी सहायता करने गए। दुर्जय दैत्यको उन्होंने मारकर इन्द्रको निर्भय करदिया पर स्वयं वह भी युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

अपने पति कुशकी मृत्युका समाचार सुन नागभगिनी कुमुद्वती भी पतिकी अनुगामिनी हुई।

अब बूढ़े मन्त्रियोंने कुशके पुत्र अतिथिको राजपद पर बैठानेका विचार किया। अभिषेककी सब सामग्री इकट्ठी की गई। कारीगरोंके द्वारा एक मनोहर मण्डप बनवाया गया। सब तीर्थोंके पवित्र जल सुवर्णके पात्रोंमें बुलाए गए और विधिवत् राजतिलक हुआ। राजतिलकके उपलक्षमें महाराज अतिथिने ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दिया। कैदी जेलखानोंसे छोड़दिये गये। जिन्हें फांसीकी सजा हुई थी वह रद कर दी गई। बेगार, और बैल ऊँट आदि पशुओंमें क्रूरताके साथ बोझा लादना बन्द करा दिया गया। ढौंड़ी पिटा दी गई कि, गायोंको दुहकर कोई उन्हें कष्ट न पहुँचावे। पींजरोंमें दुःख पातेहुए और अपने प्रियजन विरहके तापसे दिन २ क्षीण होते हुए तोते मैने आदि पक्षी विमुक्त होकर आनन्दपूर्वक अपने २ इच्छित स्थानको चले। अतिथि राज्यपद पर आरूढ़ होकर विधिवत् शासन करने लगे। वह बड़े क्षमावान् और विश्वासके आधार थे। वशिष्ठकी

मन्त्रणा और राजाके बाहुबलने असाध्य कार्यको भी सुलभ और साध्य करदिया अतिथि बड़े धार्मिक और परिश्रमी थे। आलस्य छोड़कर वे राजकाज प्रतिदिन किया करते थे। वह बड़े सत्यवादी और दानी थे। जिस वस्तुको किसीको एकबार दे डालते उसे फिर कदापि नहीं लेते थे। वह बड़े निरभिमानी, नम्र और जितेन्द्रिय थे। लक्ष्मी अपनी चञ्चलता छोड़कर उनकी सेवामें स्थिरचित्त हुई। अतिथि राजा सौन्दर्य, यौवन और ऐश्वर्य संयुक्त होकर भी बड़े सन्मार्गगामी और क्षमावान् थे। वह ऐसा काम कभी नहीं करते जिससे उनकी प्रजाको कुछ कष्ट होता। प्रजा उनके राज्यमें बड़े सुख शान्तिपूर्वक रही। दिन २ उनके धनजनकी उन्नति होती रही उनका राज्यकोष सदैव परिपूर्ण रहा करता था। शत्रु उनके सम्मुख शिर उठा नहीं सकते थे। वह बड़े विचार और साम, दान, दण्ड और भेदके अनुसार सन्धि विग्रह आदि कार्य किया करते थे। व्यापारकी वृद्धि उनके राज्यमें बेहद हुई। वणिकगण नदी, वन, पर्वतमें निर्भय होकर व्यापारके निमित्त विचरण करने लगे। वह राक्षसोंसे तपस्वियोंकी तथा चोरोंसे धनमालकी रक्षा किया करते थे। राज्यप्रबन्ध और शक्तिस्थापनके लिए आश्रमवासी तथा चारोंवर्णके लोग उन्हें अपनी कमाईका छठवाँ अंश

दिया करते थे। वह वसुधाका पालन करते थे। वसुधा उनके उपकारके पलटे उन्हें खानसे रत्न, खेतोंसे शस्य, वनोंसे हाथी प्रदान करती थी। कपट युद्धसे वह दूर रहते थे अतः विजय लक्ष्मी सदैव उनका अवलम्बन करती थी। दरिद्र भिक्षुक तथा साधुवृन्द अतिथिराजाके संसर्गसे स्वयं दानी बनजाया करते थे। वह प्रशंसनीय कार्य करते थे पर जब कोई उनकी प्रशंसा करता तो वह लज्जित हो जाते थे। वह बड़े कर्तव्यनिष्ठ, परोपकारी और प्रजाप्रेमी थे। अपने सद्गुणोंके द्वारा वह शत्रु मित्र उदासीन सबके हृदयमें विराजमान हुए। वह स्वयं बड़े विद्वान् थे। एवं सुशिक्षा द्वारा प्रजाकी अज्ञानता दूर किया करते थे। वह अपने अतुल प्रताप और सद्गुणोंके कारण राजाधिराजके पदपर आरूढ़ हुए। वह अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणोंको धन द्वारा सन्तुष्ट करते थे। उनके राज्यमें यथाकाल इन्द्र पानी बरसाया करते थे; यम रोगोत्पत्ति निवारण करते थे; वरुण जलमार्ग सुगम्य कर देते थे और कुबेर उनके भण्डारको धन सम्पत्तिसे परिपूर्ण रक्खा करते थे।

अठारहवाँ सर्ग १८.

निषधराजकन्याके गर्भसे अतिथिका एक पुत्र हुआ। इसका नाम निषध था। निषध यथाकाल सब विद्याओंसे युक्त होकर युवावस्थाको प्राप्त हुए। अतिथिने तब उन्हें राज्य देकर अपनेको भाग्यवान् समझा। अतिथिने फिर विषय वासना त्याग कर स्वर्ग लोकको गमन किया। निषध पिताके मरणोपरान्त ससागरा पृथ्वीको शासन करने लगे। फिर निषधकी मृत्युके बाद उनका पुत्र नल राजा हुआ। नल बड़े सुन्दर और पराक्रमी थे। नलके पुत्रका नाम नभ था। घनश्याम शरीर नभ बड़े ही प्रजाप्रेमी थे। इनके पिताने इन्हें राजगद्दी देकर अपना शेष जीवन तपोवनमें व्यतीत किया था। पुण्डरीक नामक नभका पुत्र हुआ। पुण्डरीकने दिगविजय करके सब राजाओंको अपने वशमें किया। फिर जब उनका पुत्र क्षेमधन्वा राज्य करनेके योग्य हुआ तो वह उसे राज्य दे तपस्या करने वनमें चले गए। क्षेमधन्वा प्रजा पालन करनेमें बड़े कुशल थे। वह पृथ्वीकी भाँति सहिष्णु थे। क्षेमधन्वाके पुत्रका नाम देवानीक था। देवानीक देवतुल्य और अतुल पराक्रमी थे। वह बड़े पितृभक्त थे। उनके पिता उनपर बड़ा प्रेम रखते थे। क्षेमधन्वा उन्हें राज्यभार दे स्वर्गवासी हुए। देवानीकके पुत्र अहीनगु हुए। अहीनगु

बड़े ही मधुरभाषी थे। हीन लोगोंकी संगति वह कभी नहीं करते थे। व्यसन उनके पास फटकने तक नहीं पाते थे। बड़े सदाचारी थे। इन्होंने नीतिके अनुसार प्रजा पालन किया। इनके बाद इनके पुत्र पारियात्र राजा हुए। पारियात्रके पीछे उनके पुत्र शिल राजा हुए। शिल अति सुशील, पराक्रमी और विनयी थे। शिलके मरणोपरान्त उनके पुत्र उन्नाभ राज्यपद पर आरूढ़ हुए। उन्नाभके पीछे वज्रनाभ, और वज्रनाभके पीछे शंखण यथासमय उत्तर कोशलके अधीश्वर हुए। शंखणके पुत्र व्युषिताश्व हुए। इन्होंने भूतनाथ काशीश्वरकी आराधना करके विश्वसह नामक पुत्र पाया। विश्वसह नीतिशास्त्रके अद्वितीय पण्डित और प्रजाओंके परम हितकारी थे। उनके पुत्रका नाम हिरण्यनाभ था। दोनों पिता पुत्र अपने बाहुबलसे शत्रुओंका मान मर्दन कर निर्विघ्न राज्य करने लगे। हिरण्यनाभको राज्य दे यथासमय विश्वसह तपस्या करने वनको चले गए। हिरण्यनाभके बाद कौशल्य और कौशल्यके बाद ब्रह्मिष्ठ राजा हुए। ब्रह्मिष्ठ रघुकुलके भूषणतुल्य थे। उनके राजत्वकालमें प्रजा महा आनन्दके साथ रही। उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न हुआ। उनके पुत्रका नाम पुत्र था। ब्रह्मिष्ठ इन्हें राज्य अर्पणकर पुष्कर तीर्थको चले गए। पुत्र यथासमय पुष्य नामक अपने पुत्रको राज्य देकर योगिराज महर्षि जैमिनीके

यहाँ जाकर योगमार्गके पथिक हुए। पुष्यकी मृत्युके अनन्तर उनका पुत्र ध्रुव राज्याधिकारी हुआ। ध्रुवके पुत्र सुदर्शन बड़े रूपवान् थे। राजा ध्रुव मृगयाके लिए वनमें गयेथे वहाँ सिंहके द्वारा उनकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्युके समय सुदर्शन निरे बच्चे थे। उनकी उम्र उस समय छे वर्षकी थी। तथापि मन्त्रियोंने उन्हें राजगद्दी पर बैठाना उचित समझा। और बड़े समारोहसे उनका राज्यतिलक पूर्ण हुआ। सुदर्शन बड़े तीव्र बुद्धिके थे। पण्डितोंके संसर्गसे उन्होंने अल्प अवस्थामें ही दण्डनीति शास्त्रमें पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिया। ज्यों२ उनकी उम्र बढ़ती गई त्यों२ उनके अवयव और कौलिक गुण विकाशको प्राप्त होने लगे। थोड़े दिनोंमें ही वेद (त्रयी) कृषि वाणिज्य आदिकी विद्या (वार्ता) और राजनीतिमें सुनिपुण होगए अर्थात् सहज ही धर्म अर्थ और कामके अधिकारी होगये। और बड़ी योग्यताके साथ प्रजापालन करने लगे।

क्रमशः इन्द्रियोन्मादन कारिणी यौवनावस्था उपस्थित हुई। मन्त्रियोंने चतुर दूतियोंकी सहायतासे सुलक्षणा एवं परम रूपवती राजकन्याओंके साथ महाराज सुदर्शनका विवाहकार्य सम्पादन किया।

उन्नीसवां सर्ग।

ज्ञानवयोवृद्ध परम जितेन्द्रिय महाराज सुदर्शन अग्नि समान तेजस्वी अपने पुत्र अग्निवर्णको राज्यासन पर विठाकर नैमिषारण्यको चले गए। वहाँ वह आनन्दके साथ निष्काम तपस्या करने लगे। पवित्र तीर्थजलके आगे विहार वापीको, कुशासनके आगे दुग्ध फेनवत् कोमल शय्याको और शान्ति-दायिनी पर्णकुटीके आगे सुरम्य महलको वह तुच्छ समझने लगे।

अग्निवर्ण निर्विघ्न रूपसे राज्यशासन करने लगे। उनके पिताने अपने अतुल पराक्रम और राजनीति कुशलतासे सारे राज्यको निष्कण्टक कर दिया था। अग्निवर्णको शासन कार्यमें जरा भी कठिनाई नहीं पड़ी। उन्होंने कुछ दिनोंतक तो स्वयं राज्यका शासन किया फिर सब राजकाजका भार अपने मन्त्रियोंको समर्पण कर वह स्त्रीपरायण होगये। रात दिन भीतर महलोंमें स्त्रियोंके साथ रहने लगे। वह तो विषयमें ऐसे लिप्त होगये कि कुछ कहा नहीं जाता। वह गाने बजाने और स्त्रियोंके साथ विहार करनेमें ही अपने पुरुषार्थकी इति श्री समझने लगे उनका दर्शन पाना दुर्लभ हो गया। प्रजा-वृन्द उनके दर्शनके लिए तरसा करते थे पर वह उन्हें दर्शन देना पाप समझते थे। मन्त्रियोंके अनुरोधसे जब कभी वह प्रजाओंको दर्शन देना चाहते थे तो केवल अपना पांव खिड़की-मेंसे नीचे लटका दिया करते थे। इस प्रकार अपने कर्तव्यसे विमुख होकर वह विषयवासनामें लिप्त हो रहे। अब तो वह

मदिरापान भी करने लगे । रात दिन अति विषय और अनियमित आहार विहारसे लोग कबतक स्वस्थ रह सकता है ? भीषण और असाध्य क्षय रोग उन्हें आक्रमण कर दिन दिन क्षीण करने लगा । उनका शरीर पीला हो गया आभरण बोझसे ज्ञात होने लगे । चलने फिरनेकी शक्ति न रही ।

इधर मन्त्रियोंने उनके रोगाक्रान्त होनेका समाचार प्रजापर प्रकट न किया और बहाना बनाके यह बात प्रसिद्ध की कि, राजा पुत्रोत्पत्तिके हेतु गुप्तभावसे जपादि कर्म करते हैं बड़े २ वैद्योंके द्वारा चिकित्सा होने लगी पर सब विफल हुआ । अन्तमें उनकी मृत्यु होगई मन्त्रिवर्ग रोगशान्तिके बहाने राजाकी मृत देहको अन्तःपुरसे समीपके उपवनमें लेगये और पुरोहितोंके सहित गुप्तभावसे उनका अग्निसंस्कार आदि अन्त्येष्टिक्रिया समाप्त की ।

अग्निवर्णकी रानी उस समय गर्भवती थी वृद्ध मन्त्रियोंने यह देखकर उन्हें राजगद्दी पर बैठाया । वह पुत्रोत्पत्तिकी आशा किए वृद्ध मन्त्रियोंकी सहायतासे विधिवत् अपने स्वामीके राज्यका उत्तम रूपसे शासन करने लगी ।

इति श्रीरघुवंशसार समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्, प्रेस—बंबई.

क्रय्य पुस्तकें (काव्यग्रन्थाः ।)

नाम. की. रु. आ.

रघुवंशमहाकाव्य—कालिदासकृत—मल्लिनाथ-कृत संजीवनी टीका और टिप्पणीसमेत । इसमें राजा दिलीपसे लेकर लव-कुश तथा अग्निवर्णके चरित्रतक १९ सर्ग हैं । इसकी महिमा कौन नहीं जानता ? विद्यार्थियोंको परमोपयोगी है पक्की जिल्द ... १—८

” तथा सादी जिल्द ... १—४

रघुवंशमहाकाव्य—सटीक तथा रामकृष्णाख्य-विलोमकाव्य सटीक—ये दोनोंका एक गुटका है महीन अक्षर. .... ०—१०

रघुवंशमहाकाव्य—विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद-जीमिश्रकृत सान्वय भाषाटीका पदयोजना तात्पर्यार्थ और सरलार्थसहित ग्लेज कागज. ३—८

” तथा रफ कागज ... ... ३—०

रघुवंशमहाकाव्य—(केवल पाँच सर्ग) उपरोक्त अलंकारोंसे युक्त भाषाटीकासमेत ।... .... १—४

रघुवंशमहाकाव्य—सटीक सर्ग १ से ५ तक ०—४

रघुवंशमहाकाव्य—सटीक सर्ग ६ से १० तक ०—४